




ब्रम्हदत्त जिस समय काशी का राजा था, बोधिसत्व उस राज्य का एक 'क्रयाधिकारी' हाकिम था।

'क्रयाधिकारी' के पद पर वही नियुक्त होता था जो राज्य के लिए आवश्यक वस्तु-वाहन की परख पहचान करने और उनकी कीमत आकलन करने में चतुर हो।

बोधसत्व काशी-राज्य के लिए आवश्यक हाथी-घोड़ों, सोने-चाँदी की परीक्षा करता और इनकी कीमत कूत कर उनके सौदागरो को पैसा दिया करता था।

राजा ब्रम्हदत्त भारी शक्की और कञ्जूस था। इसलिए वह हमेशा शक करता रहता था कि यह बोधिसत्व सब वस्तुओं का ज्यादा दाम देता रहता है। यह तो मेरे राज्य का दिवाला ही निकाल देगा। एक दिन ऐसा सोच कर, उसने खिड़की के दरवाजे खोला और किले के पिछवाड़े नजर दौड़ाई। वहाँ अपने किसी परिचित आदमी पर उसकी नज़र पड़ी।

बस, बगैर सोचे ही उसने उसे बुलवा भेजा और बोधिसत्व के स्थान पर 'क्रयाधिकारी' नियुक्त कर लिया।

राजा ने उम्मीद की होगी कि यह अपना आदमी हाथी घोड़ों के मोलतोल में राज्य का फायदा कर दिखाएगा।

लेकिन हुआ उलटा। नया 'क्रयाधिकारी' भोन्दू था। उसे हाथी-घोड़े के गुण-दोष, उनकी पहचान-परख और कीमत-कुत का कुछ मी शऊर न था। इसलिए जब कभी हाथी-घोड़े आदि खरीदने और मोलतोल करने का मौक़ा आता तो वह यों ही कुछ अंट-शंट बोल बैठता था। उसके लिए न उसके पास कोई कसौटी थी न आधार था।

टी. बी. श्रीनिवास




इस बेढङ्गे मोल तोल से व्यापारियों को भारी घाटा उठाना पड़ता था। लेकिन घाटा होने पर भी, राज दरबार के अधिकारी से, कुछ कहने में अपने को असमर्थ पाकर सकपकाए हुए सौदागर, जो भी कीमत लगाई जाती और मिलती, लेकर चुपचाप चल देते थे।

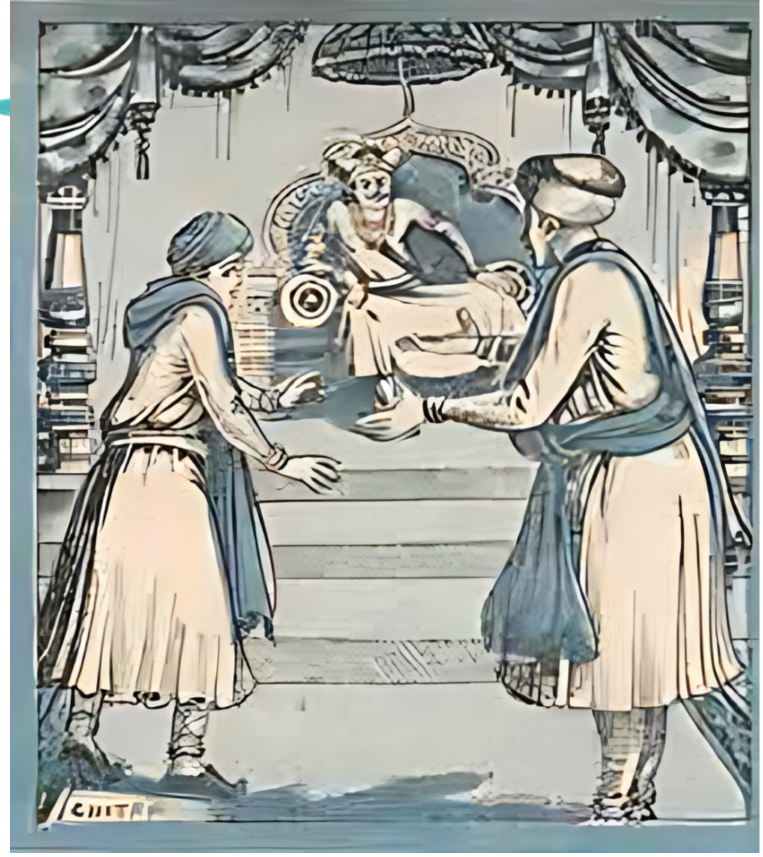
एक दिन उत्तरी प्रदेश से एक घोड़े का सौदागर, पाँच सौ बढ़िया नस्ल के घोड़े लेकर, काशी राज के दरबार में आया। राजा ने सुरन्त अपने नए क्रयाधिकारी को बुलवाया और कहा कि इन घड़ों की जाँच पड़ताल करके दाम लगा दो।

क्रयाधिकारी ने जाकर उन घोड़ों की जाँच-पड़ताल की और तपाक से हुक्म-नामा लिख दिया-"पाँच सेर चावल देकर उस सौदागर को विदा कर दो और पाँच सौ घोड़ों, को ले जाकर शाही अस्तबल में बाँध दो।" अपने भाग्य और भगवान को कोसते हुए सौदागर दरबार से चला गया। लेकिन दूसरों की तरह चुपचाप घर न जाकर वह सीधे भूत-पूर्व क्रयाधिकारी बोधिसत्व के पास पहुँचा और अपना दुखड़ा सुना कर उसकी सलाह और सहायता माँगी।

सब कुछ सुनकर बोधिसत्व ने गम्भीर होकर कहा-"भाई, पहले तुम अधिकारी के पास जाओ और खुश करने के लिए उसे कुछ घूस दो। फिर कहो-"हुजूर ने घोड़ोंका जो दाम लगाया है, वह बहुत ठीक है; लेकिन पाँच सेर चावल का दाम कितना होता है, मेहरबानी करके यहाँ यह भी दरबार में जरा बता दें, तो बड़ा अच्छा हो।"

बोधिसत्व ने फिर कहा-"इसके लिए अधिकारी अगर राजी हो जाय, तो कल उसे राजा के दरबार में ले जाओ। उस समय में भी वहाँ मौजूद रहूँगा और बाकी बातें देख लूँगा।"

बोधिसत्व के कहे मुताबिक वह सौदागर उसी रात को उस भोन्दू क्रयाधिकारी के पास पहुँचा और अकेले में उसेकी मुट्ठी गरम कर के धीरे से अपनी बात कही। घूस पाकर वह लालची अत्यन्त खुश हुआ और बोला-"यह कौन-सी बड़ी बात है ? मैं राजा को सब कुछ समझा दूँगा। तुम इसकी कोई चिन्ता न करो।"



दूसरे दिन काशी-राज का दरबार खचाखच भरा था। मन्त्रीगण तथा सभी प्रधान पदाधिकारी वहाँ उपस्थित थे। राजा की इच्छा से उस दिन बोधिसत्व भी हाजिर हुआ था।

सौदागर उठा और हाथ जोड़ कर बोला-"सरकार, मेरे पाँच सौ घोड़ों का जो एक पसेरी चावल दाम लगाया गया, वह बहुत ठीक है। उसके बारे में मुझे कुछ भी कहना नहीं है। परन्तु मेरे मन में एक छोटा-सा सन्देह पैदा हो गया है। हुजूर उसे दूर कर दें। एक पसेरी चावल का दाम इस राज्य में कितना होता है, हुजूर ?"

राजा को इन सब बातों को कोई खबर न थी। इसलिए सरल भाव से उसने अपने नए अधिकारी से पूछा-"पाँच सौ घोड़ों का कितना दाम लगाया गया है ?"

क्रयाधिकारी ने लापरवाही से कहा-"हुजूर! एक पसेरी चाबल।"

राजा ने फिर पूछा-"बहुत अच्छा ! तो अब यह भी बता दो कि जब पाँच सौ घोड़ों का दाम एक पसेरी चावल होता है, तब एक पसेरी चावल का दाम कितना होगा?"

बेवक़ूफ़ क्रयाधिकारी बिना सोचे-विचारे बोल उठा-"एक पसेरी चावल का दाम और कितना होगा, सरकार ? यही काशी और

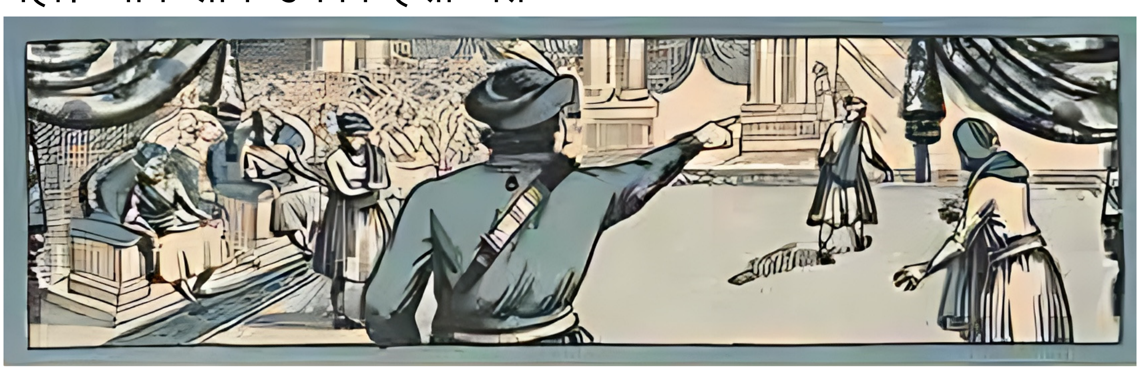
उसके समन्त-राज्यों को मिला कर जितना हो सकता है,सिर्फ उतना ही।"

इस अद्भुत जवाब को सुनते ही मन्त्री-मण्डल और प्रमुख-दरबारियों के हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गए। उस कोलाहल ध्वनि से सारा दरबार गूँज उठा। लोग क्रयाधिकारी की मखौल उड़ाने लगे-"राज्यों की कीमत लगाना अब तक हम कितना कठिन मानते आ रहे थे, लेकिन आज मालूम हुआ कि समस्त काशी राज्य की कीमत केवल एक पसेरी चावल है। वाह, कैसी गजब की बुद्धि है इसकयाधिकारी महोदय की!"

उसी समय बोधिसत्व उन लोगों के सामने आया और बोला-"भाइयो ! इस क्रयाधिकारी महोदय ने जो कुछ कहा है, वह सोलह आना सही है। उसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। आप लोग उनकी हँसी मत उड़ाइए। उन्होंने पाँच सो घोड़ों का दाम पाँच सेर चावल बताया और पाँच सैर चावल का दाम सामन्त-राज्य-सहित समस्त काशी राज्य का दाम लगा दिया। इससे सिद्ध यह हुआ कि इन पाँच सौ घोड़ों का दाम सामन्त राज्य सहित सारे काशी-राज्य के मूल्य के बराबर है। इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि जो दाम इन पाँच सौ घोड़ों का लगाया गया है, वह एक निश्चित आधार पर है और एकदम मुनासिब है।"

बोधिसत्व की बात सुन कर सब लोग विस्मित हो उठे।

उसके बाद सच-झूठ का पता सब को लग गया। बस, कशी-राज की आँखें खुल गई। उसने तुरन्त उस भोन्दू को पदच्युत कर दिया और उसकी जगह पर फिर से बुद्धिमान बोधिसत्व को क्रयाधिकारी बना दिया।

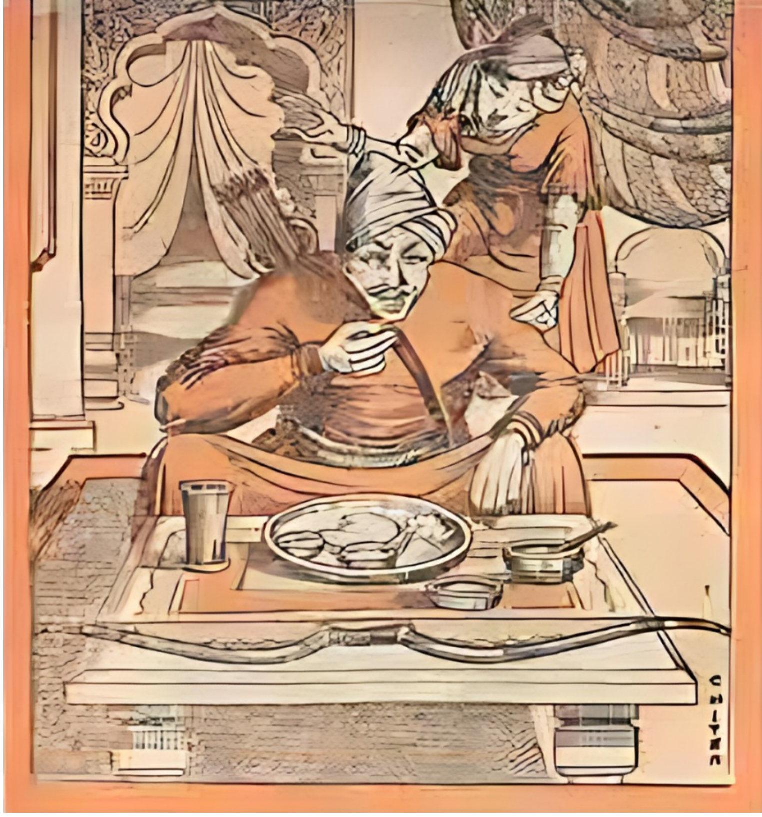





उस रात रामनगर में भीमसिंह और उसके सिगही आराम से सोए। तड़के ही उठ कर भीमसिंह अपने काम में लग गया। वह बड़ा ही कड़ा आदमी था। डरा-धमका कर या लालच दिखा कर किसी न किसी तरह काम बना लेना ही उसका एक मात्र लक्ष्य था।

उस दिन सवेरे जब विजयसिंह बची-खुची सेना लेकर रामनगर पहुँचा तो भीमसिंह अपने कमरे में बैठा हुआ था। उसी कमरे में एक लड़का भी बैठा हुआ था, जिसकी उम्र दस बारह साल से ज्यादा न थी।

विजयसिंह घोड़े से उतर कर जल्दी जल्दी अन्दर घुसा। भीमसिंह ने सिर उठा कर उसकी तरफ देखा और कहा-"विजय ! तू यहाँ कैसे ? रामसिंह कहाँ है ?" विजय ने उन्हें सादर प्रणाम किया। चिठ्ठी निकाल कर उन्हें दी और बोला-"लीजिए ! यह पत्र पढ़िए। आपको सब कुछ मालूम हो जाएगा।" उस पत्र को पढ़ते ही भीमसिंह का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। बोला-"इस पत्र में एक गाने के बारे में लिखा गया है। तुमने भी पढ़ लिया था वह गाना?" विजय ने सिर हिला कर 'हाँ'



कर दिया। "क्या उस गाने में कहा गया था कि तुम्हारे पिताजी को सोमशर्मा ने मारा डाला था ?" भीमसिंह ने पूछा। "लेकिन सोमशर्माजी ने कहा कि वे कुछ नहीं जानते।" विजय ने जवाब दिया। "ठीक तो कहा। मैं तुम्हें इन सब बातों के बारे में कभी-न-कभी फुरसत से बताऊँगा। उस समय लोगों ने सोचा कि चण्डीदास ने ही उन्हें मारा। लेकिन दिन अच्छे नहीं थे। वह जान बचा कर भाग गया और इस बारे में कुछ नहीं किया जा सका। अच्छा, मैं तुम्हें एक पत्र लिख देता हूँ। जलपान करके तुम इसे लेकर तुरन्त लौट जाना !" भीमसिंह ने आदेश दिया। "पत्र और किसी के जरिए भेज दीजिए न ? मुझे भी अपने साथ लड़ाई में आने दीजिए न?" विजय ने विनती की। लेकिन भीमसिंह को यह पसन्द न आया। वह पत्र लिखने में लग गया और इधर विजय जलपान करने लगा।

जलपान करते करते उसे अचानक ऐसा लगा जैसे कोई पीछे से उसका हाथ छू रहा हो। एक कोमल कण्ठ ने उसके कानों में फुसफुसा कर कहा-"लड़के! मुझे पूरबड़ीह की राह बता सकते हो ?" "गिरिदुर्ग की राह चले जाना। नदी पर जा पहुँचोगे। वहाँ पूछ-ताछ करने से तुम्हें आगे की राह मालूम हो जाएगी।" विजय ने धीमे से जवाब दिया। पल भर बाद जब सर उठा कर देखा तो वह लड़का, जो अब तक उस कमरे में बैठा हुआ था, गायब था।

"अच्छा! उसी छोकरे ने मुझे 'लड़के!' कह कर पुकारा था ? फिर कभी मिला तो कान उमेठ दूँगा।" विजय ने सोचा।

थोड़ी देर में भीमसिंह ने चिठ्ठी लिख कर उसे दे दी। विजय उसे लेकर गिरि-दुर्ग को लौट चला।

उसके उधर जाते ही चन्द्रदुर्ग के स्वामी के यहाँ से, जो कोसलपूर के सामन्तों में से एक था, एक दूत भीमसिंह के यहाँ आया। उस भूत ने बताया कि "सवेरे ही लड़ाई शुरू हो गई है और आप की मदद बहुत जरूरी है।"




लेकिन उसकी बातों पर भीमसिंह का ध्यान था ही नहीं। वह चिल्ला रहा था-"करुणा कहाँ है ? वह शैतान लड़की कहाँ चली गई ?"

यह सुन कर एक सिपाही ने अरज किया-"हुजूर ! लड़की कौन ? हमने तो यहाँ कोई लड़की नहीं देखी।"

"अभी तक मेरे कमरे में एक छोकरा बैठा हुआ था न ? वह लड़की थी बेवकूफ।" भीमसिंह ने कहा।

"लेकिन उसे तो आप 'करुणाकर' कह कर पुकार रहे थे। वह तो थोड़ी ही देर पहले घोड़े पर सवार होकर यहाँ से चला गया !" नारायण नाम के सिपाही ने कहा।

फिर खड़े खड़े मुँह क्या ताक रहे हो? नारायण ! तुम सिपाहियों को लेकर उसका पीछा करो ! उसे पकड़ कर गिरिदुर्ग ले जाना और वहीं रखना! समझे!" भीमसिंह ने गरज कर कहा। नारायण सिपाहियों को लेकर करुणाकर का पीछा करने निकला।

विजय जो बहुत आगे निकल गया था, गिरि-दुर्ग के नजदीक के एक दलदल के पास पहुँचा। वहाँ उसे दलदल में फँसा हुआ एक घोड़ा दिखाई दिया। वह सोचने लगा- "सवार भी कहीं नजदीक ही होगा।" इतने में उसे एक लड़का दिखाई दिया। यह वही लड़का था जिसने जलपान करते वक्त विजय से पूरवडीह की राह पूछी थी। उसने उस लड़के को बुला कर अपने घोड़े पर चढ़ा लिया।



थोड़ी दूर जाने के बाद उसने पूछा-"लड़के! तुम्हारा नाम क्या है?" "मेरा नाम करुणाकर है।" उस लड़के ने जवाब दिया। "भीमसिंह तुम्हारे क्या होते हैं?" "कुछ नहीं होता। वह मुझे जबर्दस्ती पकड़ लाया था। अब भी अगर मैं उसके चंगुल में फँस गया तो खैर नहीं। इसलिए मैं भाग कर पूरबडीह जा रहा हूँ लड़के।" छोकरे ने जबाब दिया।

"फिर लड़के कहते हो ? में क्या तुमसे छोटा हूँ ? तुम भीमसिंह से भाग रहे हो! तुम्हारी मदद करने से मेरी भी जान पर आ बनेगी। मैं क्यों नाहक अपना गला फँसाऊँ ?" विजय सिंह ने कहा। बस, यह छोकरा तुरन्त गिड़गिड़ा कर उससे माफी माँगने लगा।

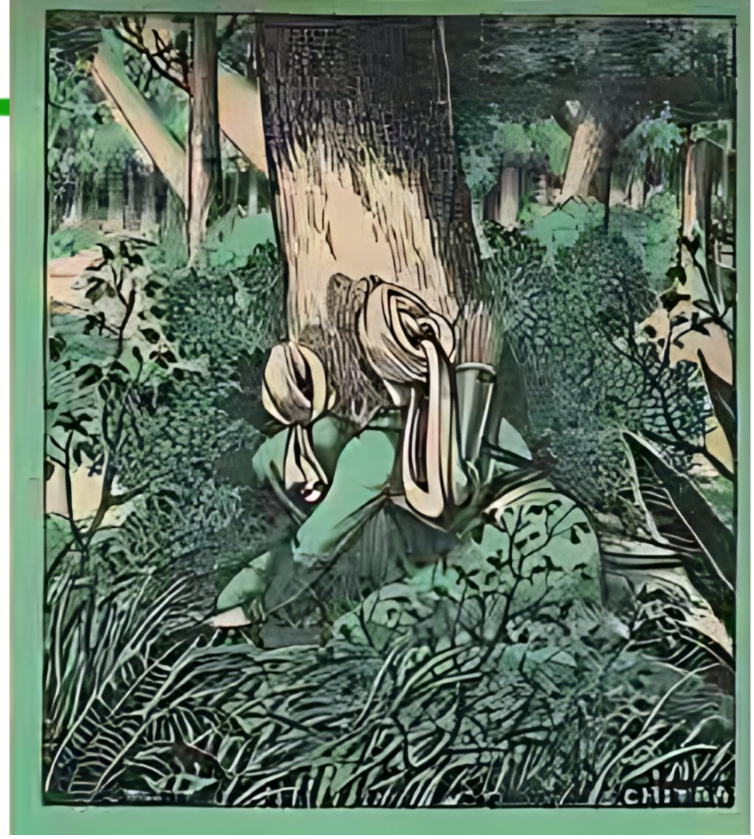
आखिर विजयसिंह को तरस आ गया। उसने कहा-"डरो नहीं ! मैं तुम्हारे ऊपर कोई खतरा न आने दूँगा।"

वह यों उसे धीरज बँधा ही रहा था कि पीछे से किसी के चिल्लाने की आवाज आई। तब तक वे दोनों घाट पर पहुँच गए थे।

विजयसिंह के पुकारने पर मल्लाह दौड़ा आया। वह विजय को जानता था। करुणाकर की ओर देख कर उसने पूछा-"यह कौन है ?" "मेरा रिश्तेदार है।" विजय ने कहा।

मल्लाह करुणाकर को सर से पाँव तक गौर से देखने लगा। विजयसिंह ने कहा-"बेहुदे की तरह क्या घूरते हो ?" मल्लाह ने जो करुणाकर को देख कर हँसने लगा था, अपनी हँसी दवा ली।

वह नाव को घाट से हटा कर दूसरी और ले जाने लगा। यह देख कर विजय को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने कारण पूछा तो नाव वाले ने एक पेड़ की तरफ इशारा किया। उस पेड़ की डाली पर एक आदमी कमन पर तीर चढ़ाए खड़ा था। "कौन आ रहा है ?" वह चिल्लाया।



"कोई भी हो तुम्हें क्या ?" विजय ने भी चिल्ला कर कहा। मल्लाह चिल्ला ही रहा था-"यह विजय है, और कोई नहीं" कि एक तीर सन्नता हुआ आया और विजय के घोड़े के कलेजे में चुभ गया। यह गड़बड़ी देख कर करुणाकर तो उछल कर किनारे कूद गया लेकिन विजय के कूदने के पहले ही घोड़ा गिर गया, नाव उलट गई। विजय भी पानी में गिर पड़ा।

किसी तरह तैर कर विजय किनारे पहुँच गया। करुणाकर खड़ा खड़ा उसकी राह देख रहा था। वहाँ जङ्गल घना था। दोनों दौड़ कर भागने लगे। लेकिन करुणाकर थक कर थोड़ी ही देर में लङ्ग्ड़ने लगा। तब विजय करुणाकर को सहारा देकर उसे ले जाने लगा। थोड़ी दूर जाने के बाद उसने करुणाकर से कहा-"मुझे अब मालूम हो रहा है कि तुम्हें देख कर मल्लाह क्यों हँस रहा था। तुम बहुत ही कमज़ोर और नाजुक बदन दिखाई देते हो। इसलिए उसने तुम्हें लड़की समझ लिया।" "नहीं, नहीं।" करुणाकर झट से बोला। लेकिन शरम से उसके गाल लाल हो गए। "नहीं कैसे? तुम्हें देख कर ऐसा ही भ्रम होता है। उस बेचारे की कोई गलती नहीं।" विजय ने कहा। वे दोनों इस तरह थोड़ी ही दूर गए थे कि सामने से एक हरिण भागता हुआ नजर आया। उसे देख कर विजय के मन में शक पैदा हो गया। उसने एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर देखा तो दूर नदी के किनारे कुछ चलते हुए धब्बे से दिखाई दिए। शक सच ही साबित हुआ। दोनों जल्दी जल्दी कदम बढ़ा कर आगे बढ़े।

थोड़ी देर बाद वे जङ्गल के छोर पर पहुँचे। इतने में कोई आहट हुई। तुरन्त विजय और करुणाकर एक पेड़ के तने की ओट में छुप गए। सामने के पेड़ पर खड़ा



एक तीरन्दाज़ दूर दूर तक ताकता हुआ पहरा दे रहा था।

"चलो, बाई और से भाग चलें।" विजय ने कहा। जगह दोनों के लिए नई थी। इसलिए चौकन्ने होकर आगे बढ़ने लगे।

इतने में उन्हें किसी के गाने की आवाज सुनाई दी। दोनों रुक गए। देखा तो सामने एक बड़ा ही गहरा गढ़ा था उसकी बगल में ही एक पुराना उजाड़ खण्डहर था। वहीं एक चूल्हा भी सुलग रहा था। लुटेरों के भेस में एक आदमी चूल्हे के नजदीक ही लेटा हुआ सो रहा था। नजदीक ही और भी कुछ आदमी बेचैनी से लोटते हुए रसोई पकने का इन्तजार कर रहे थे। थोड़ी देर बाद जब रसोइए ने सीटी बजाई तो तीस-चालीस आदमी थालियाँ और कटोरे लेकर दौड़ते हुए आए और पङ्गत में बैठ गए।

सब से पीछे और भी एक आदमी जिसे देखने से उन सबका सरदार मालूम पड़ता था आकर बैठ गया। उसने सब लोगों से कहा-"भाइयो ! जल्दी जल्दी खा लो। एक छोटा सा काम है।" भोजन समाप्त होने को ही था कि एक तीर सन्नाता हुआ आकर खण्डहर की दीवार में चुभ गया। शायद वे सभी इसी इशारे की राह देख रहे थे। क्योंकि तुरन्त सब लोग जहाँ के तहाँ हाथ धोकर उठ खड़े हुए और तीर-कमान लेकर तैयार हो गए। सरदार ने उन लोगों से कहा-"भाइयो! या तो भीम सिंह या उसके कुछ बन्दे हमारे चंगुल में फँस गए हैं। याद रखना, सिर्फ अभयसिंह का ही नहीं, हमें बहुतों का बदला चुकाना है।" पल में लुटेरे सभी ओझल हो गए।

विजय और करुणाक र ने सुख की साँस ली। "चलो, अब हम लोग आगे चले।" करुणाकर ने कहा। "वाह भाई ! तो क्या

तुम ने मुझे भगोड़ा ही समझ लिया है!" विजय ने कहा। "तो क्या तुम भीमसिंह के सिपाहियों को बचाओगे? लुटेरों का सरदार क्या बोला सुना नहीं? अभयसिंह कौन थे? तुम्हारे पिता नहीं थे?" करुणाकर ने उत्तेजित होकर कहा। "लुटेरों की बात का कौन भरोसा !" इतना कह कर विजय लौट चला। लाचार होकर करुणाकर को भी उसके पीछे पीछे चलना पड़ा।



यों वापस जाते जाते विजय को दूरी पर नारायण और उसके जत्थे वाले बेखबर आगे बढ़े आते दिखाई दिए। ज्यों ही वे लोग एक खुली जगह पर पहुँचे कि चारों तरफ से तीरों की बौछार होने लगी।

दुश्मन कहीं नहीं दिखाई देते थे। लेकिन तीरों की बौछार हो रही थी और नारायण के सिपाही एक-एक कर जमीन पर लोट रहे थे। आखिर नारायण के सिवा कोई न बच रहा। नारायण भी एक बार चारों तरफ़ ताक कर वहाँ से भाग चला।

लेकिन वह भाग कहाँ सकता था ? दुश्मन उसकी हरेक चाल ताक रहे थे।झाड़ियों में से ठहाका मार कर हँसने की आवाज़ आई। नारायण के गुस्से का ठिकाना न रहा। उसने तीर चढ़ा कर एक झाड़ी की ओर निशाना लगा कर मारा। संयोगवश वह एक लुटेरे को लग गया। वह चीख पड़ा और चारों तरफ से तीरों की बौछार होने लगी।

नारायण ने जान बचा कर भागने की कोशिश की।

लेकिन जाल में फँसा हुआ हरिण कहाँ भाग सकता था ? एक तीर जो आकर कलेजे में चुभ गया तो नारायण धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। विजय दौड़ कर उसके पास पहुँचा।

उसकी भी जान चली गई होती, अगर एक लुटेरा न चिल्लाया होता कि "वह अभयसिंह का लड़का है। उसे मत मारो।" नारायण कभी का ठण्डा हो गया था।

विजय और करुणाकर गिरि-दुर्ग की ओर भाग चले। राह में उन्हें बहुत से सिपाहियों के जत्थे भागते दिखाए दिए। इससे विजय की विदित हो गया कि युद्ध में कोसलपुर की हार हो गई है। फिर भीमसिंह का क्या हुआ ?

थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक डमरू की आवाज सुनाई दी। आवाज धीरे धीरे नज़दीक आती गई। थोड़ी देर में डमरू वाला भी सामने दिखाई दिया। उसे देखते ही करुणाकर चीख कर बेहोश हो गया। डमरू वाला और कोई नहीं; भीमसिंह था।

"अच्छा, विजय! तुम्हें तो अच्छा दोस्त मिल गया है। कितने दिन की जान-पहचान है ?" भीमसिंह ने कहा।

"जी! यह राह में मिल गया। मगर आप इस भेष में कैसे ?" विजय ने पूछा। "क्या करता ? युद्ध में हार हो गई। नारायण नहीं दिखाई दिया ?" भीमसिंह ने पूछा।

तब विजय ने डरते डरते नारायण के जत्थे की जो दुर्गत हुई थी, सुनाई। बस, भीमसिंह की आँखें क्रोध से लाल हो गई। वह बोला-"अच्छा, मैं गिरि-दुर्ग जा रहा हूँ। तुम अपने मित्र को लेकर पीछे से आना। हाँ, भूलना नहीं। उसे भी जरूर साथ ले आना।" इतना कह कर उसने विजय से कसम खिला ली कि वह करुणाकर को भी जरूर साथ ले आएगा और वहाँ से चला गया।

विजय को करुणाकर को साथ ले जाना ही पड़ा। वहाँ भीमसिंह उनका स्वागत करने के लिए तैयार खड़ा था।

[ अभी और है ]





# पाप-मोचन

किसी जमाने में एक भक्त रहा करता था। उसके मन में तीर्थ यात्रा करने की बड़ी अभिलाषा रहती थी। लेकिन बेचारे के लिए घर छोड़ना बहुत मुश्किल था। क्योंकि घर मैं बूढ़े माँ-बाप के अलावा और कोई न थे।

इस हालत में भक्त का मन मायूस रहने लगा। "इन बूढ़ों को घर पर छोड़ कर में यात्रा कैसे करूँ और मुझे मुक्ति कैसे मिले ?" उसने सोचा। इस सोच में पड़े हुए भक्त का जी बहुत उचाट रहने लगा। कभी कभी विचार उठता-"चुपचाप कहीं चला जाऊँ!" लेकिन फिर मन न मानता।

यों दिन बीतते जा रहे थे। अन्त में उसे एक अच्छा मौका मिला। उसके रिश्तेदारों में से एक ने उस से कहा- "भैया ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे मन में यात्रा कर आने की बड़ी अभिलाषा है। इसलिए तुम जाओ ! जब तक लौट कर नहीं आओगे मैं तुम्हारे बूढ़े माँ-बाप की देख-भाल करता रहूँगा।" यह मौका पाकर बेचारा भक्त खुशी खुशी यात्रा करने निकला।

चलते चलते बहुत दिन बाद वह एक जङ्गल में पहुँचा। वह जङ्गल प्रयाग से एक सौ मील की दूरी पर था। भक्त ने बहुत से लोगों को कहते सुना था कि उस जङ्गल में मुनि कुक्कुट नाम के एक मुनि रहते हैं जिनके दर्शन मात्र से सब तरह के पाप दूर हो जाते हैं। इसलिए उस जङ्गल में पहुँचते ही वह भक्त मुनि कुकुट के दर्शन करने गया।

लेकिन वहाँ जाकर उसे बड़ी निराशा उसके हुई। मुनि कुक्कुट एक मामूली गृहस्थ की तरह रहते थे। वे विद्वान भी नहीं थे और तप भी नहीं करते थे। वह भक्त सोचने लगा कि इन में कौन सी विशेषता है ?

शङ्करलाल



उस मुनि ने रसोई बनाई और अपने बूढ़े माँ-बाप को परोसी। खा-पी चुकने के बाद उसने आराम से उन्हें चारपाई पर लिटा दिया। जब वे सो गए और उसे फुरसत मिली तो उसने यात्री के पास आकर पूछा- "कहो ! भैया ! किस काम पर आए हो ?" "मुनिवर ! मैं एक यात्री हूँ। आपके दर्शन करने आया हूँ। मैंने सुना है कि प्रयोग यहाँ से ज्यादा दूर नहीं है। क्या आप मुझे प्रयाग की राह बता सकते हैं ?" भक्त ने विनीत स्वर से पूछा। "लेकिन

प्रयाग की राह मुझे नहीं मालूम। मैं कभी प्रयाग गया ही नहीं। बूढ़े माँ-बाप की वजह से घर छोड़ कर जाने का मौका नहीं मिलता।" मुनिवर ने जवाब दिया।

मुनिवर का यह जवाब सुन कर भक्त के हृदय से उनके प्रति रही-सही श्रद्धा भी चली गई। वह उनसे छुट्टी लेकर चला तो सोचने लगा- "इनकी बड़ी बड़ाई सुनी थी मैने ! बात कुछ समझ में नहीं आती।"

यह सोचते हुए वह थोड़ी ही दूर आगे चढ़ा था कि उसे तीन औरतें सामने से आती दिखाई दी। भक्त को उन औरतों को देख कर बड़ा अचरज हुआ। क्योंकि वे इतनी कुरूप और भद्दी थीं कि देखते ही घृणा पैदा होती थी। उनके सारे बदन पर फोड़े-फुन्से भरे हुए थे। चेहरा इतना काला-कलुटा कि कोयला भी मात खा जाय। मालूम होता था जैसे सारे संसार की कालिख उन्हीं के चेहरे पर पुती हुई हो। भक्त ने सोचा कि उनसे पूछे कि वे कौन हैं और कहाँ जा रही हैं। लेकिन साहस न हुआ।

जब उसने पीछे मुड़ कर देखा तो मालूम हुआ कि वे मुनि कुक्कुट के आश्रम में प्रवेश कर गई हैं। उसका अचरज और भी बढ़ गया। वह वही खड़ा सोचने लगा-"ये

अभी लौटेंगी तो पूछूँगा कि वे कौन हैं ?" थोड़ी देर बाद जब वे तीनों आश्रम से बाहर निकला तो उनको देख कर भक्त मुँह वाए ताकता खड़ा रह गया। क्योंकि उन तीनों की काया पलट ही हो गई थी। कहाँ वे भद्दी काली-कलूटी औरतें और ये अलौकिक सुन्दरियाँ! वे नरक की प्रेतनियाँ थी और ये स्वर्ग की अप्सराएँ। हुलिया तो मिलता था; लेकिन विश्वास न होता था कि ये वहीं है। इन तीनों का अपूर्व तेज़ देख कर आँखों में चकाचौंध पैदा हो जाती थी।



जब वे नज़दीक पहुँची तो भक्त ने उनसे पूछा-"बहनो! तुम कौन हो ?"

तब उन औरतों ने जवाब दिया- "भैया ! हम तीनों बहनें हैं। संसार इमें गङ्गा, यमुना और सरस्वती के नाम से पुकारता है। प्रयाग के निकट हम तीनों का सङ्गम होता है। देश देश से पापी लोग वहाँ हमारे जल में नहाने आते हैं। उनके सारे पापों का बोझ हमें लादना पड़ता है और हमें बहुत ही भद्दी और बिगड़ी हुई शकलें मिल जाती हैं। तुमने इसी रूप में हमें थोड़ी देर पहले देखा था।" "तो फिर यह काया पलट कैसे हो गई?" भक्त ने पूछा। जब जब यह पापों का बोझ बढ़ जाता है तो हम मुनि कुक्कुट के दर्शन से अपने पाप दूर करके निजरूप में लौट जाती हैं।" बहनों ने जवाब दिया।

"अच्छा! ये इतने प्रभावशाली कैसे हो गए ?" भक्त ने कहा। "तप करने से नहीं; माता-पिता की सेवा करने से ही इनका इतना प्रभाव हो गया है।" उन बहनों ने जवाब दिया और अदृश्य हो गईं। भक्त के पश्चात्ताप का ठिकाना न रहा। वह वहाँ से सीधे घर लौटा। माता-पिता की सेवा में लग गया। फिर कभी तीर्थ यात्रा का नाम तक न लिया।




# उधेड़-बुन

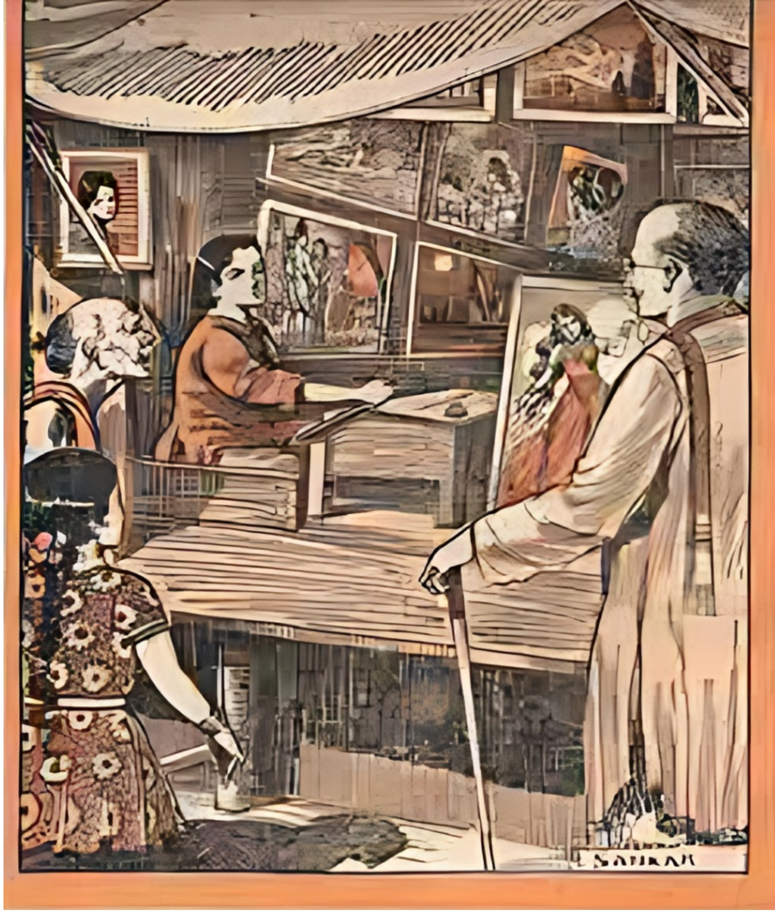
किसी गाँव में एक तस्वीर बेचने वाला रहता था। उसे उस व्यापार में ज्यादा नफा नहीं होता था। क्योंकि तस्वीर खरीदने वाले बहुत कम होते थे। तस्वीरें बहुत दिन तक दूकान में पड़ी रहती थीं। इसलिए कभी कभी घाटा उठा कर ही उन्हें बेच डाला करता था। घाटे में बेचने पर भी तस्वीरों के बिकने में मुश्किल होती थी।

एक बार वह व्यापारी किसी दूसरे गाँव गया। वहाँ पुरानी चीजें बेचने वाली बहुत दुकानें थीं। उन्हें देखते हुए आगे बढ़ते वक्त एक दुकान में एक तस्वीर पर उसकी नजर पड़ी।

वह तस्वीर बहुत सुन्दर थी। जरूर किसी निपुण, नामी चित्रकार की बनाई हुई थी। मामूली चित्रकार कभी वैसा चित्र नहीं बना सकता था। लेकिन मुश्किल यह थी कि उस चित्र पर बनाने वाले का नाम नहीं था। व्यापारी ने दूकानदार से पूछा कि क्या यह चित्र बिकने को है। दुकानदार ने कहा 'हाँ'। चित्रकार ने पूछा-"क्या दाम ?"

तब दुकानदार बोला-"भैया! जिन जिन लोगों ने यह चित्र देखा सबने यही कहा कि यह चित्र जरूर किसी नामी चित्रकार का, सम्भवतः रविवर्मा का बनाया हुआ है। लेकिन चित्र पर किसी के हस्ताक्षर नहीं है। इसलिए निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता और इसीलिए मैं दाम भी ज्यादा नहीं लेना चाहता। इस चित्र का दाम पाँच रुपए है। चाहे तो ले सकते हो ! उसकी बातें सुन कर व्यापारी सोच में पड़ गया। तब दूकानदार ने कहा -"मैंने यह तस्वीर बम्बई में खरीदी

रमण देसाई



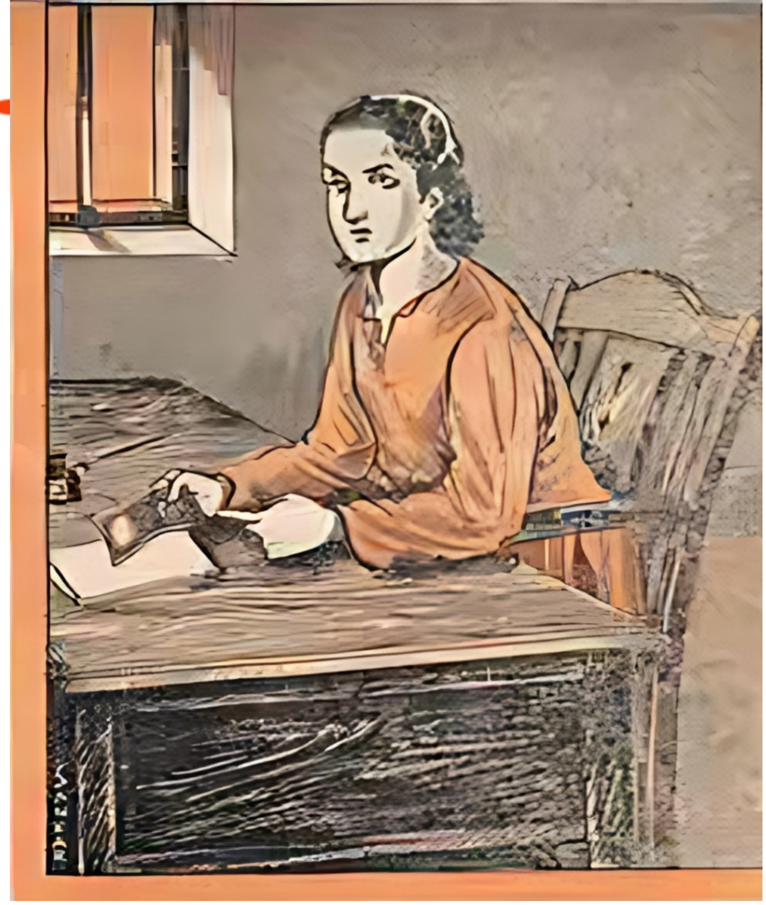
थी। एक हफ्ते बाद फिर वहाँ जाने का विचार है। इस बार जाने पर चित्र के बारे में पूछ-ताछ करूँगा। अगर यह साबित हो गया कि यह रविवर्मा का चित्र है तब तो इसकी कीमत बहुत बढ़ जाएगी। तब यह चित्र आपको सस्ता नहीं मिलेगा। इसलिए सोच-विचार कर अभी जो कुछ करना हो कीजिए।" व्यापारी ने तुरन्त पाँच रुपए देकर यह चित्र खरीद लिया।

अपने गाँव लौटने पर व्यापारी ने वह चित्र अपनी दूकान में टाँग दिया। इस चित्र ने सभी ग्राहकों को आकर्षित किया। बहुत से लोग उसे देखने भर के लिए आने लगे। सभी लोगों का यही ख्याल था कि हस्ताक्षर नहीं होने पर भी यह चित्र रविवर्मा का ही है। आखिर एक ग्राहक ने सौ रुपए देकर उसे खरीद भी लिया।

उस तस्वीर बेचने वाले के जीवन में यह एक अपूर्व घटना थी। उसने कोई भी चित्र इतने नफे में नहीं बेचा था। अपनी चतुरता और सौभाग्य पर वह फूला न समाया। उसके मन में विचार उठा-"मेरे इस सौभाग्य का कारण है वह दुकानदार। बड़ा ईमानदार आदमी था वह। सारी बातें साफ साफ बता दीं। वह मुझे यह चित्र इतने कम दाम पर न देता तो मुझे इतना मुनाफा कभी न होता। इसलिए उचित तो है कि में अपने मुनाफे का आधा हिस्सा उसे भी दूँ।"

यह निश्चय करके व्यापारी ने सोचा कि दूकानदार को एक चिट्ठी लिख कर इस बात की सूचना दे देनी चाहिए। यह सोच कर वह टिकट खरीदने के लिए डाक घर गया। लेकिन डाक घर बन्द था। इसलिए न वह टिकट ही खरीद सका और न चिट्ठी ही भेज सका।

दूसरे दिन सवेरे फिर उसे इस बात की याद हो आई। उसने सोचा-"कल मैं बड़ी बेवकूफी का काम करने चला था। दुकानदार को आधा हिस्सा देने की क्या जरूरत है ? उसे मालूम था कि वह चित्र रविवर्मा का हो सकता है। उसने जान-बूझ कर ही वह चित्र मुझे पाँच रुपए में दिया था। इसलिए दुकानदार को दस रुपए भेजना ही काफी है। यह कुछ कम नहीं है।" यह कह कर उसने अपने मन को समझा लिया और काम में लग गया। शाम को उसे फिर एक बार इस बात की याद हो आई। मन में थोड़ी बेचैनी पैदा हुई। उसने सोचा-"मैं दूकानदार को दस रुपए तो भेज दूँगा। लेकिन इससे उसे ज्यादा फायदा न होगा। उलटे नुकसान ही ज्यादा पहुँचेगा। क्योंकि दस रुपए पाकर वह समझने लगेगा कि सभी आदमी इसी तरह ईमानदार और उदार स्वभाव के होते हैं। इस से वह हरेक ग्राहक को एक देवता समझने लगेगा। इस के कारण अन्त में उसे बड़ी निराशा होगी और बड़ी मुश्किलें झेलनी पड़ेंगी। इसलिए दस रूपए उसे भेजना ठीक नहीं।" उसने सोचा।



लेकिन इससे मन को शान्ति नहीं पहुँची। इसलिए थोड़ी देर बाद उसने सोचा-"अच्छा, दस रुपए भेजने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन कुछ-न-कुछ तो भेजना ही चाहिए। नहीं तो यह कहा जा सकता है कि मैं बड़ा स्वार्थी हूँ।" इस तरह उसने निश्चय तो कर लिया; लेकिन उस दिन भी रुपए नहीं सेजे जा सके। दूसरे दिन कपड़े पहनते वक्त उसे फिर इस बात की याद हो आई। उसने सोचा-"भाग्य की मुझ पर कृपा थी। इसलिए वह तसवीर मेरे हाथों ज्यादा दाम पर बिकी। मैंने न कोई फरेब ही

किया और न किसी की जेब ही मारी। फिर जो कुछ भाग्य-वश मिल गया, उस में दूकानदार को हिस्सा क्यों दूँ ? कोई जरूरत नहीं। मगर पहले उसे देने का निश्चय किया था वह निश्चय बदलने की भी कोई जरूरत नहीं। इसलिए एक रुपया भेज दूँगा। वास्तव में तो दुकानदार को यह लिख देना ही काफी है कि तुम ने मुझे जो चित्र बेचा था उसमें मुझे नफा हुआ। लेकिन मैं उदार स्वभाव का हूँ। इसलिए उसे एक रुपया भेज रहा हूँ और अपना एहसान जता रहा हूँ। इसके अलावा और क्या चाहिए ?" यह सोच कर उसने एक रुपए का कागज निकाल कर अलग एक लिफाफे में रखा और उसे जेब में रख कर डाक खाने चला गया।

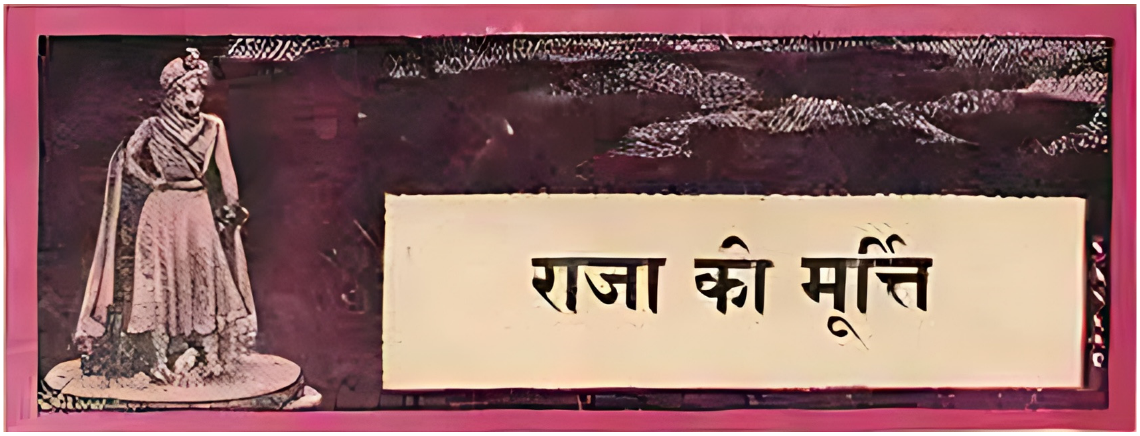
राह में उसका एक जुआरी दोस्त मिला। यह उसे अपने साथ ले गया। मित्र को जुआ खेलते देख कर व्यापारी के मन में भी जुआ खेलने की इच्छा हुई। वह जुआ खेलने बैठा। उसका मन खेल में लग गया और वह डाक घर जाने की बात ही भूल गया।

अन्त में वह सब कुछ हार बैठा। जब निराश होकर जेब टटोलने लगा तो वह लिफाफा हाथ लग गया जिस में उसने दूकानदार को भेजने के लिए एक रुपया अलग रखा था।

वह उस रुपए से जुआ खेलने लगा। उसका भाग्य पलट गया; बार बार जीत होने लगी। अन्त में वह अपना पैसा वापस ही नहीं पा गया, बल्कि और भी कुछ जीत गया। शाम को हिसाब देखने पर मालूम हुआ कि उसने एक सौ रुपए जीते थे।

इस तरह एक रुपए ने जिसे उसने दूकानदार को भेजना चाहा था, उसे बचा लिया।






एक शहर के बीचों-बीच, एक बड़े पत्थर के खम्भे पर, राजा की स्वर्ण मूर्ती खड़ी थी। उस की दोनों आखों में दो नीलम जड़े थे। राजा की तलवार में भी एक बड़ा रत्न जड़ा था। मूर्ती के ऊपर जब सूर्य किरण पड़ती थी, तब राजा सचमुच आनन्द स्वरूप ही मालूम होता था।

एक दिन शाम को एक गौरय्या उस शहर में आई। रात में कहाँ ठहरा जाय सोचते हुए उस पञ्छी को वह राज-मूर्ति दीख पड़ी। ऊँचे पर रहने से अच्छी हवा मिलेगी और सारा शहर भी दीख पड़ेगा-यह सोच कर वह मूर्ति के चरणों पर ही बैठ गई। गौरेया जब सोने की तैयारी में थी कि कहीं से पानी की एक बूँद उस पर आ गिरी। उसने चारों ओर देखा।

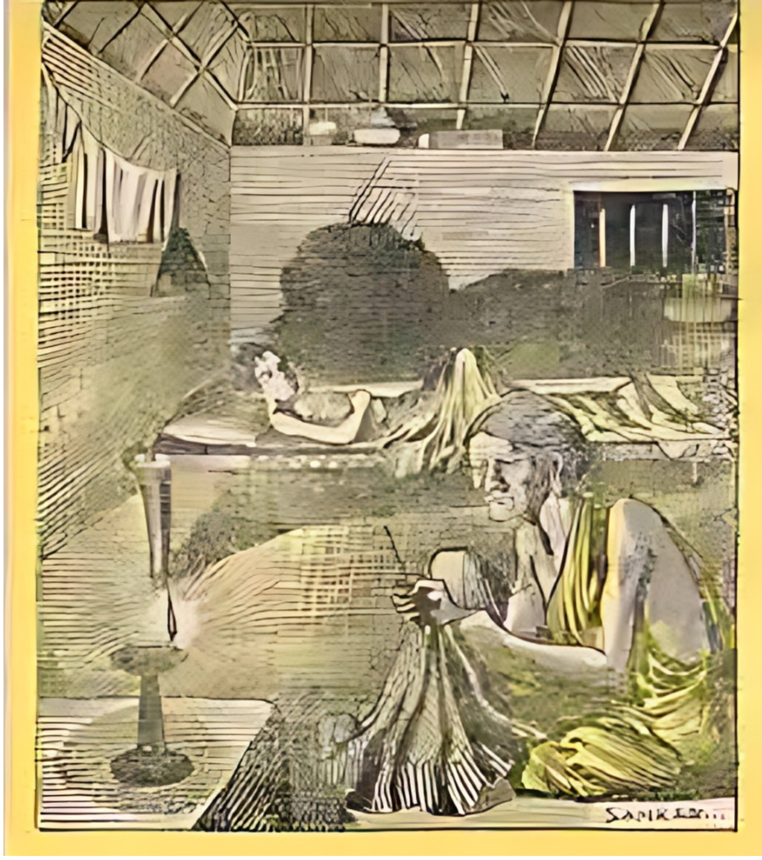
बादल का कहीं नाम न था। चाँद-तारे चमचमा रहे थे। वह आश्चर्य कर ही रही थी कि फिर एक बड़ी बूँद आ टपकी। गौरय्या को सन्देह हुआ। उसने सिर उठा कर देखा। मूर्ति ही आँसू बहा रही थी। उस के गालों पर आँसू बहते देख कर गौरय्या का दिल पिघल गया।

गौरेया ने पूछा-"तुम कौन हो ?"

मूर्ति ने कहा-"दुःख से अनजान रहने बाला में एक राजा हूँ।

"फिर रो क्यों रहे हो ?"

मूर्ति ने जवाब दिया-"जीते जी मैंने कोई दुःख नहीं देखा था। राज-महल में दुःख का प्रवेश नहीं था। आराम की जिन्दगी थी। राज-महल के बाहर क्या हो रहा है-यह मैंने कभी सोचा ही नहीं। मरने के बाद



यह मूर्ति खड़ी कर दी गई। यहाँ से नगर में होने वाली सारी बातें मुझे दीख पड़ती हैं। मेरा हृदय शीशे का बना है और वह दया से पिघल रहा है। रोने के सिवा अब चारा ही क्या रह गया है मेरे लिए?"

एक मूर्ति मुझसे बोल रही है, यह ख्याल करके गौरय्या को भारी आश्चर्य हुआ। मूर्ति ने फिर कहा- "देखो, वहाँ दूर पर एक गरीब का घर है। उस में एक बुचके-पिचके गाल वाली, झुर्रियों से भरी, बुढ़िया एक छोटा-सा दीया जला कर सिलाई करती है। बार-बार उसकी ऊँगली में सूई चुभ जाती है। पर, वह उस ओर ध्यान नहीं देती। पास ही खाट पर एक लड़का बीमार पड़ा है। वह भूखा है। नारङ्गी का रस माँग रहा है। लेकिन बेचारी माँ नारङ्गी कहाँ से लाए? वह दुःख देख कर मेरे आँसू नहीं रुक रहे हैं। गौरय्या, क्या तू मेरी एक सहायता करेगी ?"

"क्या?" गौरय्या ने पूछा।

"देख, मेरी तलवार में एक रत्न जड़ा हुआ है। ले जाकर उस बुढ़िया को दे आ। मैं तो हिल -डोल नहीं सकता। देखती है न, मेरे पाँव पत्थर में जकड़े हैं।" राजा ने कहा।

"दिन भर उड़ती उड़ती थक गई हूँ। फिर बड़े तड़के ही उठ कर परदेश चला जाना है।" गौरय्या ने कहा।

"कष्टों में पड़े हुए लोगों के साथ हमें सहानुभूति दिखानी ही चाहिए।" कह कर राजा की आँखें छलछला उठीं।

गौरेया को दया आ गई। उसने राजा की सहायता करने का निश्चय कर लिया। चोञ्च से ठोकरें मार-मार कर तलबार में जड़े उस रत्न को उसने निकाला और लेकर उड़ चली। गरीब बुढ़िया के घर

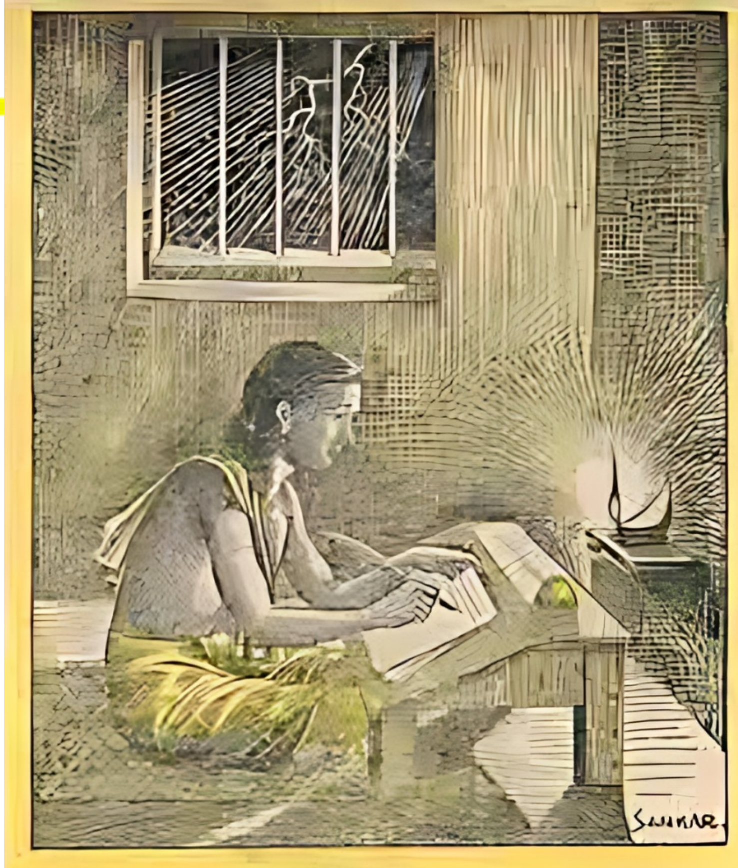
पहुँची। लड़का पीड़ा से छटपटा रहा था। माता थक कर सो रही थी। उसकी बगल में रत्न रख कर यह अपने पंखों से लड़के पर हवा करने लगी। ठण्डी हवा लगने के कारण लड़के की नींद आ गई। गौरैय्या वहाँ से उड़ी और राजा के पास पहुँची। सब कुछ बता कर बोली-"इतनी थक जाने पर भी मुझे बड़ी खुशी मालूम हो रही है।"

"सच, अच्छा काम करने पर सबको ऐसा ही मालूम होता है।" राजा ने कहा।

दूसरे दिन गौरैय्या ने सारे शहर की सैर की। दूसरे गौरेय्यों ने इस नए पक्षी को एक खास अन्दाज से देखा। रात में जब चन्द्रमा उगा, तब वह गौरैय्या राजा के पास पहुँची और बोली-"आज जाती हूँ।"

"देख-दूर पर, उस टूटे-फूटे घर में, एक तरुण कवि रहता है। वह अपने सामने कागजों का ढेर लगाए, औंधा पड़ा है। जाड़े के कारण उसकी उँगलियाँ ठिठुर रही हैं, भूख के कारण उससे लिखा नहीं जाता है।"

इस बार गौरैय्या ने राजा से अधिक अनुरोध नहीं करवाया। उसने छूटते ही कहा-"अच्छा, आज रात भी में



यहाँ रह जाऊँगी। क्या एक रत्न उस कवि को भी दे आऊँ ?"

"मेरे पास अब कोई रत्न नहीं है। लेकिन मेरी आँखों में दो नीलम है। एक निकाल कर उसे दे आ।"

"मैं तुम्हारी आँखों में चोञ्च नहीं मार सकूँगी !" यह कहकर गौरैय्या रोने लगी।

"मेरे कहे मुताबिक तू कर।" राजा ने आग्रह किया।

लाचार होकर गौरैय्या ने एक नीलम निकाला और उसे चोञ्च में रख कर उड़ चली। कवि के घर में कोई दरवाजा नहीं था।



इसलिए अन्दर जाने में उसे कोई तकलीफ न हुई। कवि आखें मूँद कर लेटा था। इसलिए गौरैय्या का आना वह न जान सका। कुछ देर बाद जब थकावट कुछ कम हुई तब उसने आँखे खोला और देखा कि बगल में नीलम पड़ा है। उसने सोचा-"मेरी कविताओं की प्रशंसा हो रही होगी। इसीसे, किसी ने ग्रह भेंट भेजी है।"

दूसरे दिन गौरैय्या फिर सार शहर में उड़ती फिरी और चन्द्रोदय होते ही राजा के पास लौट कर बोली-"मैं जा रही हूँ। यही कहने आई हूँ।"

यह सुन कर दीनभाव से राजा ने कहा-"गौरैय्या ! एक रात और मेरे पास रह जा।"

"नहीं, नहीं, चुन्नू मुन्नू मेरी राह देख रहे होंगे। मेरे कारण तुम ने एक रत्न और एक नीलम खोया। अगले जाड़े में इधर आ जाऊँगी और एक रत्न और एक नीलम तुम्हें ला दूँगी। अभी मुझे बिदा दो।"

गौरैय्या ! दूर पर एक छोटी लड़की दीखती है। वह दियासलाई बेच कर जीती है। पैर फिसल जाने के कारण उसकी दियासलाई नाली से गिर गई है। खाली हाथ घर जाने से बाप उसे लताड़ेगा। इसी से रो रही है। मेरी आँख का यह दूसरा नीलम निकाल कर तू उसे दे आ।" राजा ने कातर होकर कहा।

"जरूरत समझो, तो आज भी में तुम्हारे पास रह जाऊँगी। लेकिन इस नीलम को मैं नहीं निकाल सकूँगी। तुम एकदम अन्धे हो जाओगे।" गौरैय्या ने हठ किया।

"इसकी कोई चिन्ता नहीं। तू मेरे कहे अनुसार कर।"

गौरैय्या को राजा की दूसरी आँख भी खोदनी पड़ी। उसको ले जाकर वह लड़की

के पास रख आई। नीलम को देखते ही लड़की उछल पड़ी-"अहा! कैसा सुन्दर है।" और आँसू पोंछे बगैर ही घर की ओर दौड़ पड़ी।

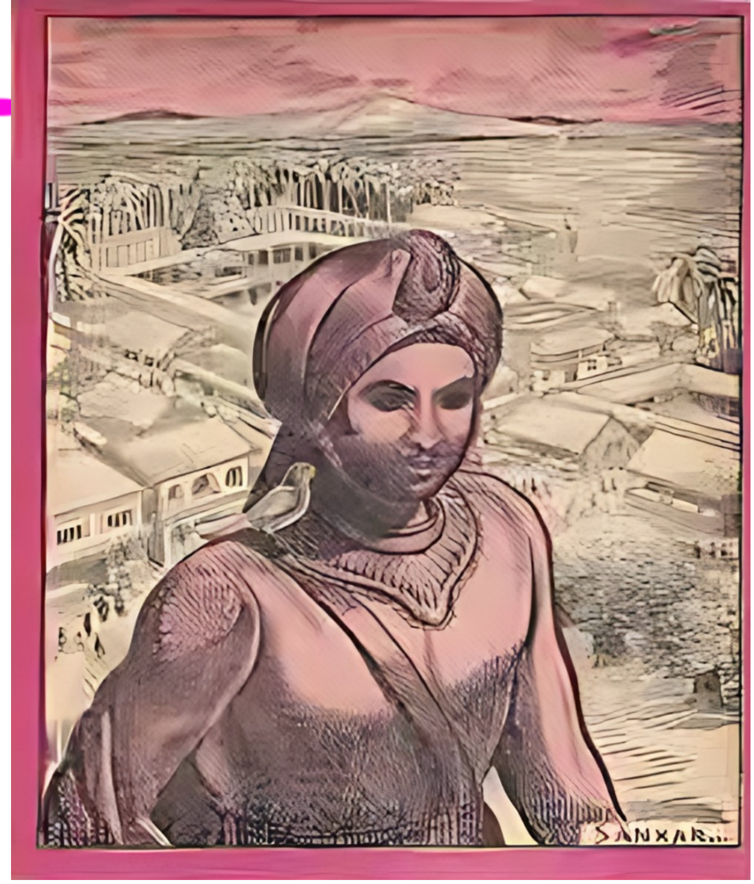
गौरैय्या राजा के पास पहुँची और कातर होकर बोली-"मैं तुम्हारे पास ही रहूँगी। अन्धे होकर अब तुम अकेले कैसे रहोगे?"

"नहीं, नहीं; तेरे लोग तेरी प्रतीक्षा में होंगे। अब तू उनके पास चली जा।"

"नहीं, मैं यहीं रहूँगी।" कह कर गौरैय्या ने वह रात भी राजा के चरणों पर बिता दी।

दूसरे दिन गौरैय्या शहर में नहीं गई। राजा के कन्धे पर बैठ कर अपने भ्रमण बृत्तांत उसे सुनाती रही। कितनी ही विचित्र बातें सुनने के बाद राजा बोला-"लेकिन सब से विचित्र बात तो है मानवों की कष्ट कथा। गौरैय्या, तू मेरे इस नगर में रह और घूम-घूम कर मुझे इस की बातें सुनाती जा।"

गौरैय्या नगर में घूमने लगी। किसी धनी के घर में दावत हो रही थी। खाने के बाद जो जूठी पत्तलें फेंकी जाएँगी, उन अनाज कणों की प्रतीक्षा में, भुक्खड़ों की भीड़ दीवार




से सटी बैठी थी। गन्दे गली-कूचों में, कोने नुक्कड़ों में, दुबके पड़े भूख से कराहते अनेक नन्हें बच्चे गौरैय्या को दीख पड़े। गौरैय्या ने जाकर राजा से ये बातें कहीं।

राजा ने कहा-"मेरा सारा शरीर सोने की परतों से ढँका है। इन्हें तू अपनी चोञ्च से उधेड़ डाल और ले जाकर दीन-दुखियों में बाँट दे। इस प्रकार उनका कष्ट कुछ कम हो जाएगा।"

गौरैय्या सोने की परत को उधड़-उधड़ कर गरीबों के घरो में गिराने लग गई। अन्त

में राजा के शरीर पर कांसे के सिवा और कुछ नहीं रहा। लेकिन गरीबों के बच्चे अब खुशी से उछल-कूद रहे थे।

पाला पड़ने लगा। गौरैय्या को सर्दी सहन न हो नहीं थी। फिर भी उसने राजा का साथ नहीं छेड़ा। वह मौत के पास पहुँच गई थी। बचने की कोई आशा न देख आखिरी बार वह राजा के पास आई और बोली-"क्या मैं तुम्हारा हाथ चूम लूँ ?"

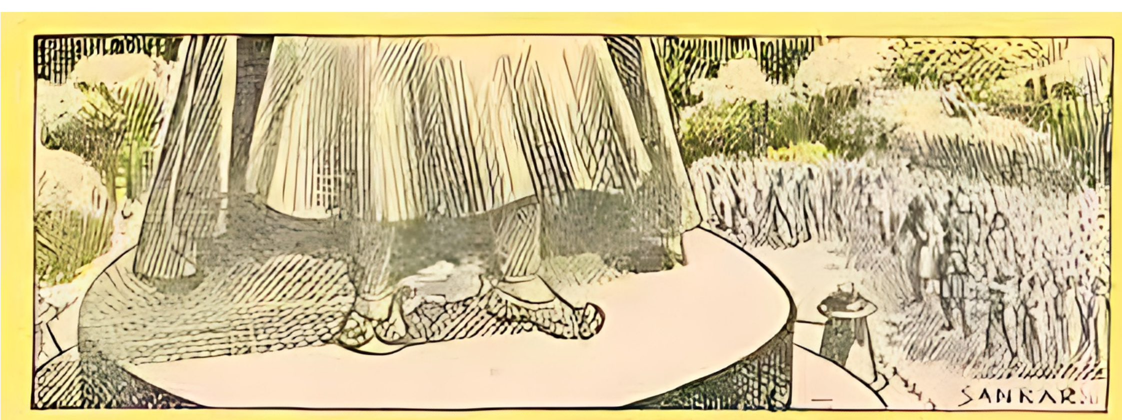
"हाथ ही क्यों, मेरे होठ ही चूम ले। अब तो अपने देश जा रही है न।" "अब मैं दूर-देश की यात्रा करने जा रही हूँ। लौट नहीं सकूँगी !" गौरैय्ये ने बिह्वल होकर कहा।

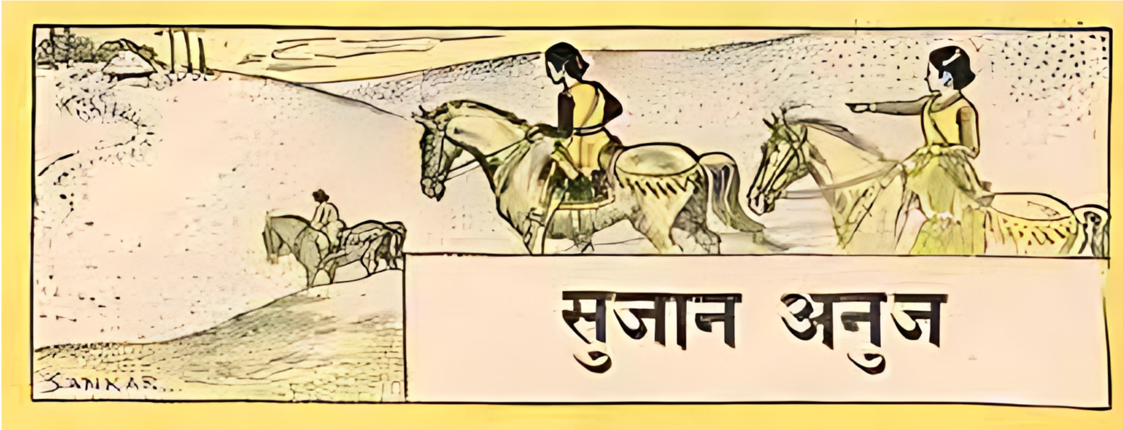
होठ चूमने जाकर गौरैय्या गिरी और राजा के चरणों में ढेर हो गई। इसी समय विश्व-ब्रह्माण्ड में एक भारी विस्फोट का शब्द हुआ। राजा का हृदय दो टुकड़े हो गया।

सवेरा हुआ। नगर के गण्यमान्य लोग उधर से गुजरे तो उस भग्न मूर्ति देख कर बले-"अब यह मूत्ति असुन्दर हो गई। इससे नगर की शोभा बिगड़ जाएगी।" यों वह मूर्ति वहाँ से हटा दी गई।

एक बार भगवान ने देवदूतों से कहा-"उस नगर से मुझे दो अनमोल चीजें ला दो।"

देव दूत सारे नगर की छानबीन करते रहे। आखिर राजा का वह दो टूक हृदय और गौरैय्या की बिखरी पसलियाँ चुन कर वे भगवान के पास ले गए। उन देवोपम वस्तुओं को देख कर भगवान की खुशी का ठिकाना न रहा।






# सुजान अनुज

गिरिदुर्ग राज्य का अधीश्वर था क्षेमेन्द्र। उसके पास एक अविश्वासी सेनापति था। वह स्वार्थी सेनापति हमेशा इसी बात की चिन्ता में रहता था कि राजा कब मेरे और कब में उसका राज्य हथिया लूँ। राजा के मरते ही, कुछ ही दिनों में, राज्य सेनापति के हाथ में चला गया। यों राज्याधिकारी होने पर वह धूर्त राजवंश के प्रति अत्यन्त क्रूर हो उठा।

क्षेमेन्द्र के तीन पुत्र थे-नन्द सुनन्द और आनन्द। सेनापति के अत्याचारों को न सहन करके वे तीनों राज पुत्र किसी वीरान प्रदेश में चले गए। उसके पास ही एक सुन्दर कुटिया थी। यहाँ एक बूढ़ा और उसकी बेटी दीख पड़ी। उन्होंने थके-माँदे राजकुमारों को अन्दर ले जाकर आव-भगत की और कुटिया में ही रात बिताने का आग्रह किया। रात होने पर तीनों भाई एकान्त में बैठ गए और आपस में विचार करने लगे कि खोया हुआ बाप का राज्य कैसे प्राप्त किया जाय। अँधेरे में उन्हें बैठे देख कर बूढ़े की बेटी इन्दुमती एक दीपक जला कर वहाँ रख गई। फिर वह भी उनके पास ही बैठ गई और उनकी बातचीत सुनने लगी।

सब से बड़े भाई नन्द ने कहा- "दुनियाँ में आदमी को चाहिए अधिकार। हाथ में अधिकार होने के कारण ही तो सेनापति ने हमारा राज्य हड़प लिया।"

दूसरा भाई सुनन्द बोला-"धन रहे तो उसके साथ अधिकार भी आ जाता है। फिर अधिकार के लिए कोशिश क्यों की जाय ?"

रामकुमार दुबे



छोटे भाई आनन्द ने अपने मन की बात नहीं बताई। वह इन्दुमती की ओर देखता बैठा रहा। दोनों भाइयों ने पूछा-"भाई, तुम भी तो कुछ कहो।" "यही ता सोच रहा हूँ" कह कर वह चुप रह गया। सवेरा हुआ। तीनों भाई कुटिया से बाहर निकले। सामने के मैदान में बञ्जारों का एक दल जाता दीख पड़ा।

नन्द बोला-"में ईशान दिशा में जाता हूँ। ठीक दस साल के बाद एक बड़ी सेना के साथ लौटूँगा। हम फिर यहाँ मिलेंगे।" कह कर वह चला गया।

सुनन्द ने कहा-"मैं वायव्य दिशा में जाता हूँ और दस साल के बाद खूब धन-दौलत के साथ वापस आऊँगा।"

फिर दोनों ने जिज्ञासा-भाव से छोटे भाई की ओर देखा।

आनन्द बोला-"मैं भी इसी समस्या में उलझा हुआ हूँ। दस साल के बाद मैं भी इसी कुटिया में मिलूँगा।"

भाइयों के बीच की यह बातचीत बूढ़ा और उसकी बेटी दोनों सुन रहे थे। काल-चक्र तेजी से घूमने लगा।

*   *   *   *

दस साल के बाद-

उस कुटिया के फूल-पौधे बढ़ गए थे और पर्णशाला के ऊपर अच्छी शोभा बिखेर रहे थे। इन्दुमती बरसा के गोद में एक सुन्दर शिशु को लिए, मैदान की ओर देख रही थी कि एक ओर से घुड़-सवारों का दल और दूसरी ओर से पैदल सेना, भार-वाही ऊँट और खच्चर आते दिखाई दिए। कुछ ही देर में वह सारा मैदान सैनिकों से भर गया। सैनिक और जानवर कतारों में खड़े हो गए। एक आजानुबाहु उन्हें आज्ञा दे रहा था।

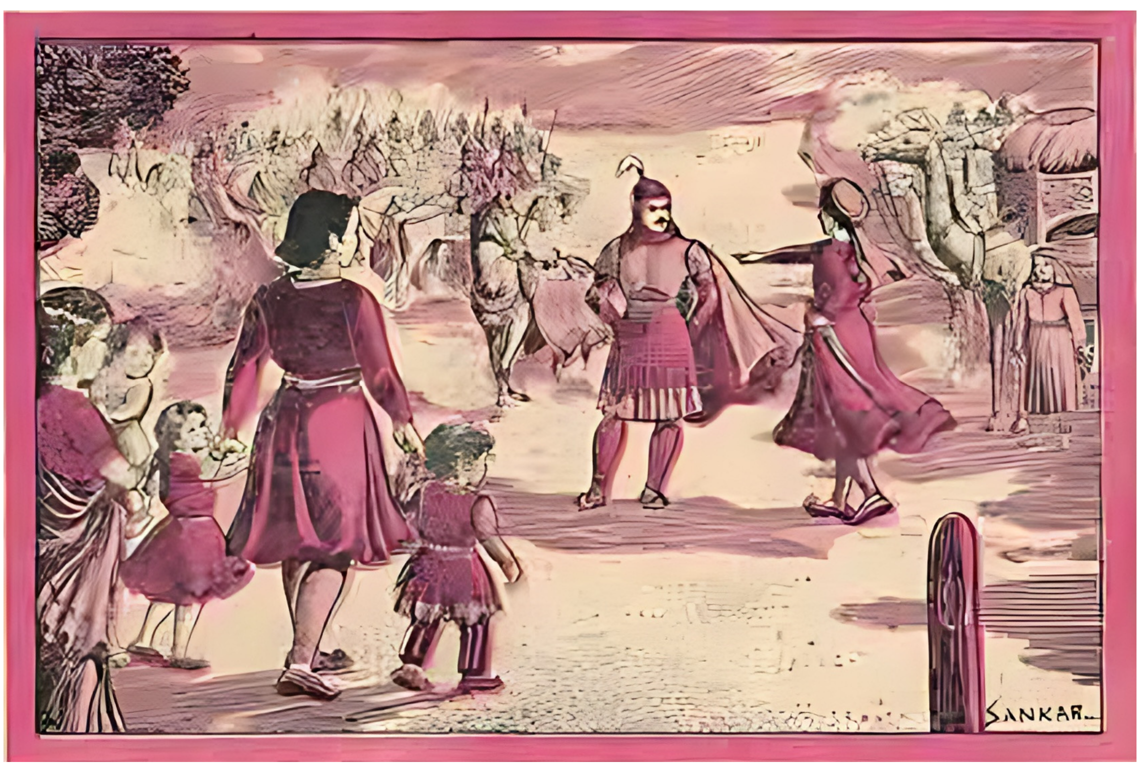
दूसरी दिशा से जानवरों की एक और लम्बी कतार आने लगी। उनकी पीठ पर चमचम चमकते रत्न-राजियों के बोरे लदे थे। मूंछों पर ताव देता एक लम्बोदर उनका अधिपति दीख पड़ा।

आजानुबाहू और लम्बोदर में परस्पर कुशल प्रश्न हुए। नन्द ही वह आजानुबाहु था और सुनन्द ही लम्बोदर।

सुनन्द  ने कहा-"अब मैं इस दुनिया में कोई भी काम कर सकता हूँ। उसके लिए पर्याप्त धन मुझे प्राप्त हो गया है।"

बड़े भाई नन्द ने अपनी सेना की ओर उँगली उठाते हुए कहा-"यह मेरी सेना है। मैं इसका स्वामी हूँ। इसके बल से ऐसा कोई काम नहीं जिसे मैं साध न सकूँ।"

दर्प से हँसते हुए सुनन्द ने कहा-"तुम्हें इस सेना का गर्व है। लेकिन तुम भूल रहे हो-अपने धन से मैं तुम्हारी सारी सेना को खरीद सकता हूँ। और इस तरह अपने राज्य पर अधिकार कर सकता हूँ।"



नन्द ने कहा-"सैन्याधिकार को तुम समझते क्या हो ? आज्ञा देने भर के देर है, तुम्हें और तुम्हारी दौलत को पलक झपकते मेरी सेना लूट ले सकती है।"

जब दोनों भाई यों बहस कर रहे थे कि छोटा भाई आनन्द, हँसता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। उसके दोनों हाथों में एक-एक बच्चा था। पीछे-पीछे एक शिशु को गोद में लिए इन्दुमती भी आई। दोनों भाइयों ने आश्चर्य से अपने अनुज को देखा। वे अपना-अपना बखान करने लगे। फिर इन दस वर्षों में तुमने क्या किया--ऐसी प्रश्न-सूचक दृष्टि उन्होंने उस पर डाली।

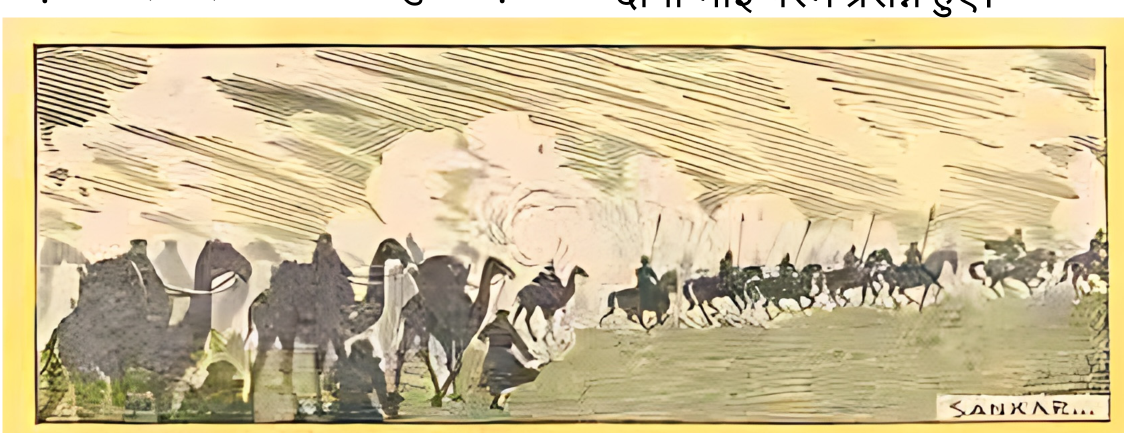
अपने बच्चों की ओर देखते हुए आनन्द ने इशारा किया-"यही सब।"

दोनों भाई फिर उलझ पड़े। उन को बड़ा गर्व हो रहा था कि वे बहुत बड़ा काम कर आए हैं। आनन्द दोनों भाइयों को घर के भीतर ले गया और उन की सुख-सुविधा का इन्तजाम करने लगा।

कुछ शान्त होने पर उसने उन्हें एक चिट्ठी दिखाई। गिरिदुर्ग की प्रजा ने वह चिट्ठी भेजी थी।

आनन्द ने कहा-"हमारा दोही वह दुष्ट सेनापति मार डाला गया। प्रजा ने आकर मुझ से अनुरोध किया कि मैं जाकर राज्य-सूत्र अपने हाथों में ले लूँ। यों बराबर पत्र आते रहे। पर मैं तुम लोगों की प्रतीक्षा करता रहा। पिता का राज्य हासिल करने के लिए अब तुम्हें कष्ट उठाने की जरूरत नहीं रही। इस के लिए न धन चाहिए, न सेना।"

अपने इस सुजान अनुज के काम से दोनों भाई परम प्रसन्न हुए।






पवनपुर राज्य का राजा अवनीन्द्र था। एक दिन वह अपने दरबार में बैठा था कि राज- दुतों ने मुश्के चढ़ा कर, एक दुबले-पतले आदमी को, उसके सामने ला खड़ा किया। "कौन है यह ?" कठोर स्वर में राजा ने पूछा।

"सरकार, यह है धूर्त चतुरी। अब जाकर कहीं पकड़ा गया है।" सुख की साँस लेते हुए राजदूतों ने जवाब दिया।

"इसे प्राण दण्ड का हुक्म देता हूँ। ले जाकर इसे इमली की डाल से लटका दो।" राजा का हुक्म हुआ।

"दया दिखाइए, हुजूर !" अत्यन्त दीन भाव से चतुरी ने कहा-"आप राजा हैं। इसलिए आप तलवार के बल से जी रहे हैं। मैं मामूली आदमी हूँ, इसलिए चालाकी से जीता हूँ। किसी भाँति जीना तो है न, सरकार।"

राजा ने चतुरी से कहा-"मेरी तलवार का मुकाबला करने वाला तो दुनिया में कोई नहीं है। क्या तेरी चालाकी का भी कोई जोड़ नहीं है ?"

"नहीं है, सरकार, नहीं है।" चतुरी ने निधड़क कहा।

"ऐसी बात! अच्छा तो तेरे बुद्धि-बल की थाह लेने के वास्ते मैं तुम्हारी तीन परीक्षाएँ लेने जा रहा हूँ। राजा ने गम्भीर होकर कहा।

"बुद्धि बल वालों के लिए असम्भव नाम का कोई काम है ही नहीं, सरकार।" मन्द मन्द मुस्कुराते हुए चतुरी ने कहा।

राजा के कहने से राजदूतों ने चतुरी की मुश्के खोल दीं। राजा उसे किले के

रामकुमार

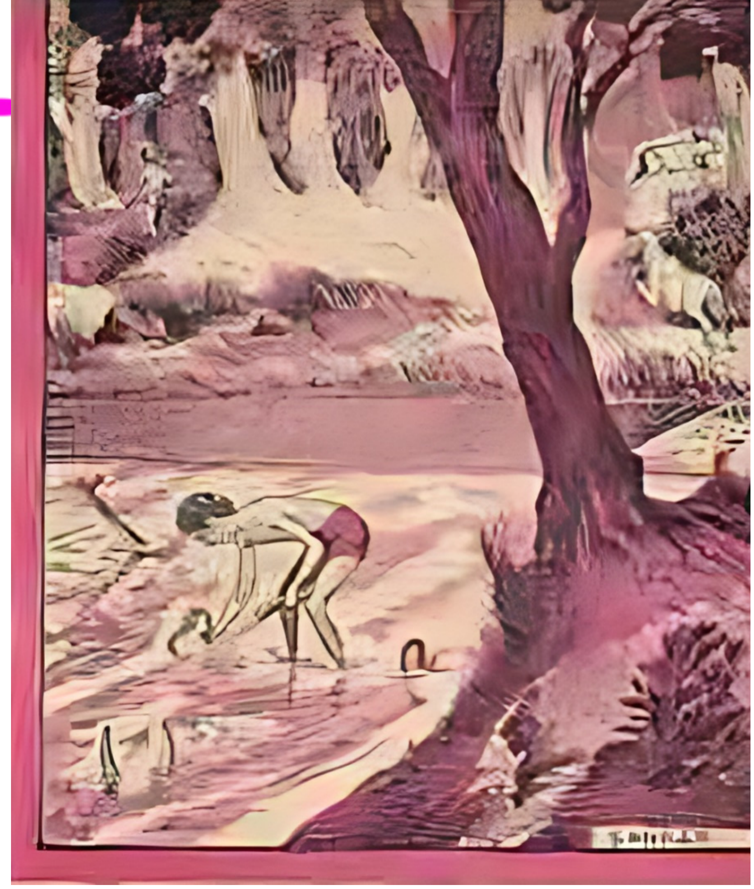
बुर्जे पर ले गया और दूर पर हल जोतते हुए एक किसान को दिखा कर बोला-"देखो, हल में जुते बैलों को,बिना किसान के मालूम हुए ले आना होगा। यह है पहली परीक्षा।"

चतुरी राजा से विदा लेकर चल पड़ा।

खेत के पास खड़े जङ्गल में जाकर वह दबे-पाँव घुसा और छिप कर मीठे स्वर में गाने लगा।

"कौन गा रहा है ?" हल जोतना रोक कर वह किसान चारो ओर देखने लगा। कहीं कोई न दीख पड़ा तो हल-बैल को छोड़ कर तन्मय भाव से वह जङ्गल में घुसा। चतुरी इसी ताक में था। तुरन्त बैलों के पास दौड़ गया। फिर कमर से चाकू निकाला और बैलों के सीङ्ग और पूँछ काट कर उन्हें वहीं जमीन में इस तरह गाड़ दिया जिससे वे कुछ-कुछ दीख पड़ते रहें। फिर उन मुण्डे और पूँछ-कटे बैलों को मार-पीट कर उसने जङ्गल में खदेड़ दिया।

इतने में किसान जङ्गल से बाहर आया। बहुत कुछ ढूँढ़ने पर भी जब गाने वाले का कोई पता न चला, तब उसने अपने मन को यों समझा लिया --कोई गन्धर्व भूला भटका इधर आ गया होगा।



और वह कर ही सकता था ? सीधे खेत में आया तो बैल नदारद। लेकिन जमीन में गड़े उनके सीङ्ग और पूँछ कुछ-कुछ दीख रहे थे। इतने में चतुरी भी वहाँ आ गया और अनजान-सा पूछने लगा-"क्या हुआ, भाई ?"

किसान ने सबकुछ उसे सुना दिया। चतुरी ने उसे सलाह दी-"बैल कहीं जमीन के अन्दर तो धँस नहीं गए ? जरा पूँछ पकड़ कर खींचो तो सही।"

किसान ने ज्यों ही उन्हें पकड़कर खींचा कि वे उसके हाथ में आ गई।



"अरे, मेरे बैल तो दल-दल में डूब गए !" यह सोच कर, अपने भाग्य को कोसता, वह किसान घर चला गया।

किले के बुर्जे पर से राजा अवनीन्द्र यह सब देख रहा था। मन-ही-मन उसने चतुरी की चालाकी को खूब सराहा। कुछ देर के बाद चतुरी भी आ गया। राजाने कहा-"चतुरी, इम्हारा बुद्धि बल सचमुच अद्भुत है। अब दूसरी परीक्षा की बात सुनो- आज रात को मेरे घुड़साल से मेरा 'पञ्चकल्याण' घोड़ा चुरा लाना होगा।"

प्रणाम करके चतुरी चुपचाप चला गया। उस के जाते ही घुड़साल में जाकर राजा ने रखवालों से कहा- "आज की रात तुम लोग खूब होशियार रहना और पञ्चकल्याण पर खास नजर रखना।" चतुरी सीधे अश्वपति के घर में घुस गया और चुपचाप उसकी पोशाक उठा लाया। उसे पहन कर जब वह घुड़साल में पहुँचा तो देखा कि पहारेदार खूब सजग हैं। एक घुड़-पवार तो पञ्चकल्याण पर ही बैठा हुआ था।

चतुरी सब कुछ समझ गया। सीधे पहरेदारों के पास आकर बोला- "बहादुरो, चोर पकड़ लिया गया है। अब तक जग कर तुम लोगों ने जो तत्परता दिखाई, उस से राजा बहुत खुश हुए हैं। उन्होंने तुम लोगों के लिए यह शर्बत भेजा है।" यह कह कर अपने पास की बोतल से थोड़ा-थोड़ा शर्बत निकालकर उसने पहरेदारों में बाँट दिया।

जागने की जरूरत अब न रही, यह सोच कर पहरेदारों ने शौक से वह शर्बत होठों से लगा लिया। शर्बत में कोई नशीली चीज मिली हुई थी। पीते ही वे बेहोश हो

गए और छद्मवेशी चतुरी, राजा के घोड़े पर चढ़ कर, निकल भागा।

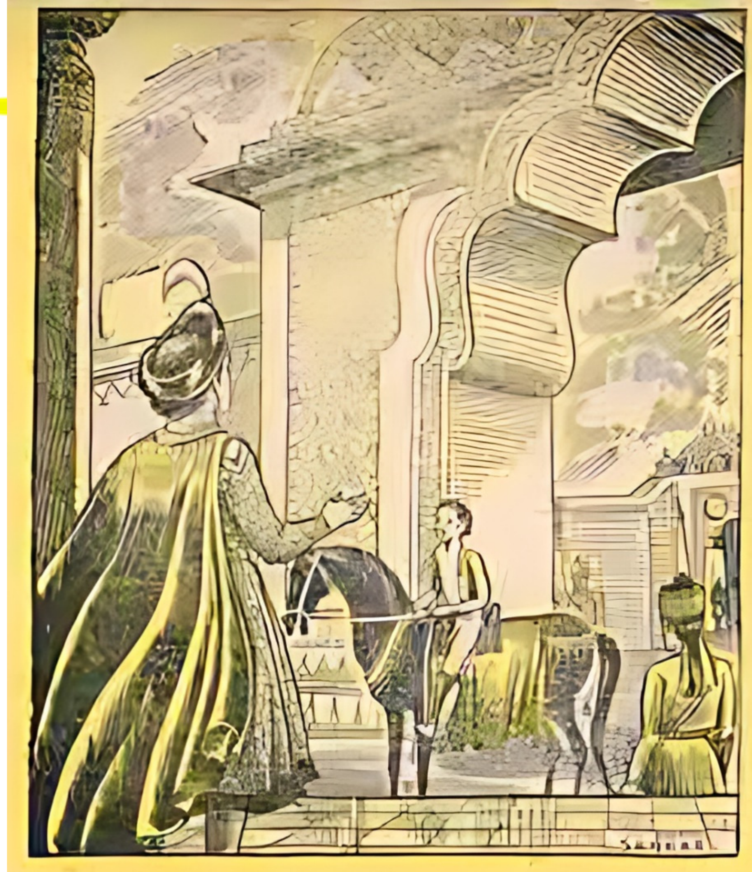
कुछ देर बाद राजा फिर धुड़साल में आया और आश्चर्य से देखा कि सब पहरेदार बेखबर पड़े हुए हैं और वह पञ्चकल्याण गायब है।

"इतनी होशियारी बरतने पर भी वह घोड़ा चुरा ले गया।" राजा सोच ही रहा था कि चतुरी घोड़े पर से उतरा और सलाम करके राजा के सामने खड़ा हो गया।

झेंपते हुए राजा ने कहा-"अब अन्तिम परीक्षा ली जाएगी। सुनो, रानी के जगे रहने पर ही, अगर तुम उसकी उँगली से सोने की अंगूठी निकाल लाओगे तो में तुम्हें माफ़ कर दूँगा।"

यह कह कर राजा रनवास में पहुँचा और रानी के पास जाकर बैठ गया। पहरेदारों को उसने पहले ही सावधान कर दिया था।

एक घण्टे के बाद किसी के आने की आहट हुई। मुण्डेर पर जाकर राजा ने नीचे देखा। दीवाल से सटी एक से सीढ़ी लगी थी। उस पर से कोई ऊपर आ रहा था। चतुरी के सिवा और कौन हो सकता है, यह



सोचकर राजा ने एक हाथ से सीढ़ी पकड़ी और बिना देखे ही उस आदमी को धकेल दिया। राजा ने जिसे धकेला था, वह असली आदमी तो था नहीं। चतुरी ने आदमी का पुतला बना कर उसे रस्सी से लटका दिया था और खुद एक कोने में खड़े होकर, रस्सी के सहारे उसे सीढ़ी पर चढ़ते, देख रहा था कि क्या होता है।

उस नकली आदमी के गिरते ही राजा मुण्डेर से नीचे आ गया।

चतुरी यह सब देख ही रहा था। राजा के उत्तरते ही चतुरी झटपट सीढ़ी से चढ़ गया और रानी के अन्तःपुर में जाकर

एक कोने में बैठा और बदले स्वर में बोला-"अरे, जो सोचा था, वही हुआ। चतुरी सीढ़ी पर से गिर कर मर गया। अब तुम्हारी अंगूठी के लिए कोई डर नहीं रहा। फिर भी कुछ रोज़ अँगूठी पहने सोना अच्छा नहीं। इस लिए लाओ, अँगूठी हिफाजत से रख दें।"

नींद में झूमती हुई रानी ने यह सुनते ही उँगली से निकाल कर अँगूठी पास ही बैठे चतुरी के हाथ में रख दी। अँगूठी हाथ में आते ही चतुरी भाग खड़ा हुआ।

कुछ देर बाद राजा वहाँ आया और नींद में बेखबर पड़ी रानी को जगा कर चतुरी के बारे में कुछ कहने जा ही रहा था कि रानी ने आँखें खोल दी। "कितनी बार कहोगे एक ही बात ? अभी-अभी तो कह गए थे और अँगूठी भी ले गए थे" झल्ला कर रानी बोली।

"अँगूठी ? क्या अँगूठी वह ले गया ?" स्तम्भित होकर राजा ने कहा। शीघ्र उसकी समझ में आ गया कि चतुरी ही अँगूठी ले भागा है।

सवेरा होते ही अँगूठी हाथ में लिए चतुरी राजा के सामने हाजिर हुआ। हँसते हुए राजा ने कहा-"चतुरी, तुम्हारी चालाकी सचमुच बेजोड़ है। प्राणदण्ड रद्द करता हूँ और सम्मान के नाम से तुम्हें सौ एकड़ खेत इनाम में देता हूँ। जाओ सुख से रहो।"

"सरकार की कृपा।" हाथ जोड़कर चतुरी ने राजा को प्रणाम किया। चालाकी से प्राप्त इनाम का सुख चतुरी आज तक भोग रहा है।






किसी समय एक जङ्गल में बिलटू नामक एक भोला-भाला गरीब रहता था। "पात-भरी सहरी" सा उसका एक बड़ा परिवार था जिसका भरण-पोषण उसे अपने बाहुबल से ही करना पड़ता था। तड़के उठना, कन्धे पर कुल्हाड़ी रख कर जङ्गल जाना, वहाँ से लकड़ियाँ काट कर गठ्ठर उठा लाना और बाजार में जाकर उसे बेच देना-यही उसका हर रोज का काम था।

एक दिन जब यह लकड़ी काट रहा था, उसी समय उधर से जाते हुए एक साधु की दृष्टि उस पर पड़ी। उसके कष्टों को देख कर साधु को दया आ गई। बिलटू को बुला कर उस साधु ने पूछा-"भाई, तुम कौन हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

"महाराज, मेरा नाम है बिलटू। लकड़हारे का काम कर के गुजारा करता हूँ।" बिलटू ने नम्रता से जवाब दिया।

साधु ने कुछ देर सोच कर कहा-"बिलटू, बड़ा ही अच्छा नाम है तुम्हारा।"

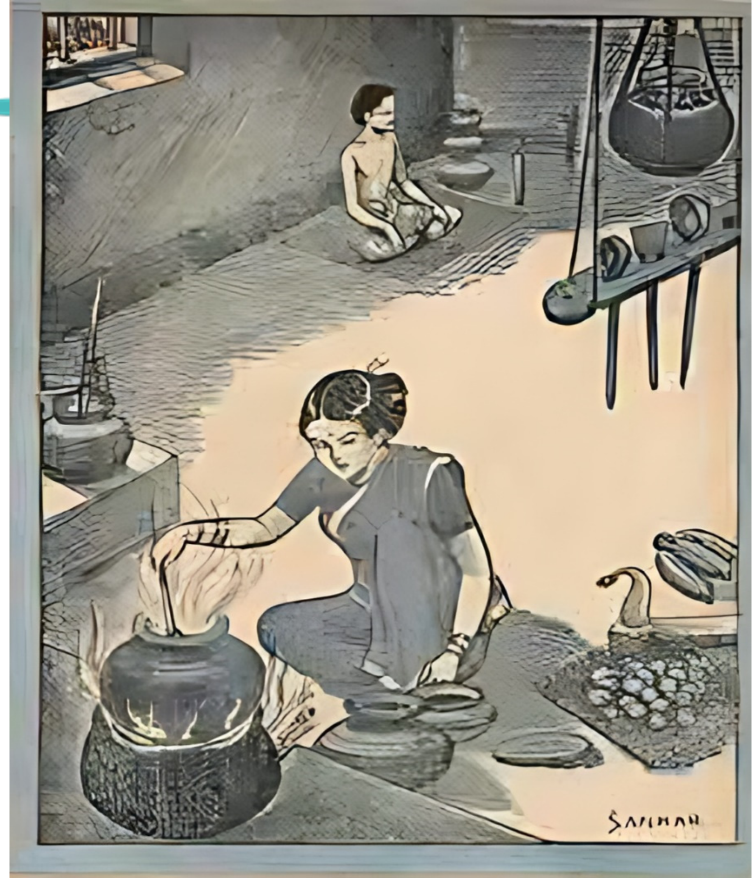
कुशल प्रश्न के बाद साधू फिर बोला-"भाई बिलटू, दुनियाँ के झञ्झटों में पड़ कर, अपने स्वार्थी परिवार के लिए तुम इतना कष्ट उठा रहे हो। क्या कभी भगवान की भी याद करते हो?"

"भगवान ! कौन है वह ? मेरे जाने-पहचाने भाई-बन्धुओं में तो इस नाम का कोई नहीं है। और 'पात-भरी सहरी' सा परिवार लेकर में इधर-उधर की बातों में कैसे पड़ूँ, महाराज?" कातर होकर बिलटू ने जवाब दिया।

बिल्टू की दीनता भरी बात सुनकर साधु को आश्चर्य हुआ और कुछ गुस्सा भी आया। उसने कुछ ब्यङ्ग से कहा-"अरे भाई, तुमने तो भगवान का भी नाम नहीं सुना है। जिसने हम सब को इन पेड़-पौधों को, जङ्गल-पहाड़ को सर-सरिताओं को और आँखों से देख पड़ने वाली इन समस्त वस्तुओं को बनाया है, उसी भगवान का नाम तुम नहीं जानते ?" यह कह कर साधु खिल खिला पड़ा।

साधु को यो हँसते देख कर बिलटू को ऐसा लगा जैसे वह कोई मारी अपराध कर बैठा हो। तुरन्त साधु के पाँवों पर गिर पड़ा और कहने लगा- "महाराज, संसार सागर से तरने का कोई उपाय तो बता दीजिए इस अभागे को।"

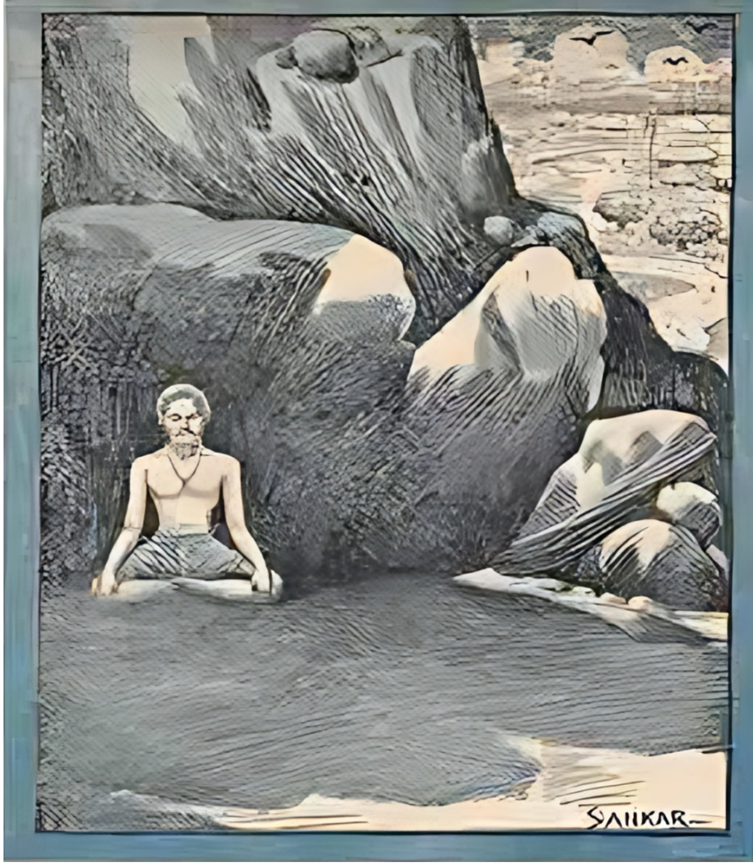
यह देख साधु ने बिलटू को दोनों हाथों से उठाया और कहा-"भाई, मोक्ष पाने में ही तो मानव जन्म का साफल्य है और मोक्ष पाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। नहीं तो मरने के बाद, याद रखो, कुत्ते या कौए होकर पैदा होना होना है।" यों साधु ने नाना तरह से उसे समझाया बुझाया।



बेचारा बिलटू घबरा उठा। अब एक 'भगवान' भी उसके हृदय में घुसकर अनेक हलचल मचाने लगा।

साधु बिलटू को दिल से आशीर्वाद देकर अपनी राह चला गया।

बिलटू ने काटे हुए लकड़ों का गठ्ठर माथे पर उठाया और भारी हृदय से पैर घसीटता हुआ गाँव की ओर रवाना हुआ। उस दिन लकड़ी बेचने से जो पैसे मिले उन्हें स्त्री के हाथ में देकर वह भगवान के ध्यान में डूब गया। पति में यह परिवर्तन देख कर बिलटू की



स्त्री पहले से चकित हुई। लेकिन दूसरे दिन जब उसने देखा कि जङ्गल जाने के बदले वह उठकर भगवान का ध्यान कर रहा है, तब वह गुस्से से भर गई। और उसने झल्लाकर कहा-"समय तो हो गया है, फिर कुल्हाड़ी लेकर जङ्गल क्यों नहीं जाते हो ?"

"नहीं, अब मैं लकड़ी काटने नहीं जाऊँगा। जङ्गल चला जाऊ, तो मेरी आत्मा की हालत क्या होगी ? लकड़ी ही काटता रहूँ, तो फिर भगवान की बात कौन सोचेगा ?" यों बिलटू बड़बड़ाया और बगैर समझे-बुझे साधु की बातें दुहराता चला गया।

पत्नी उस समय तो चुप रह गई।

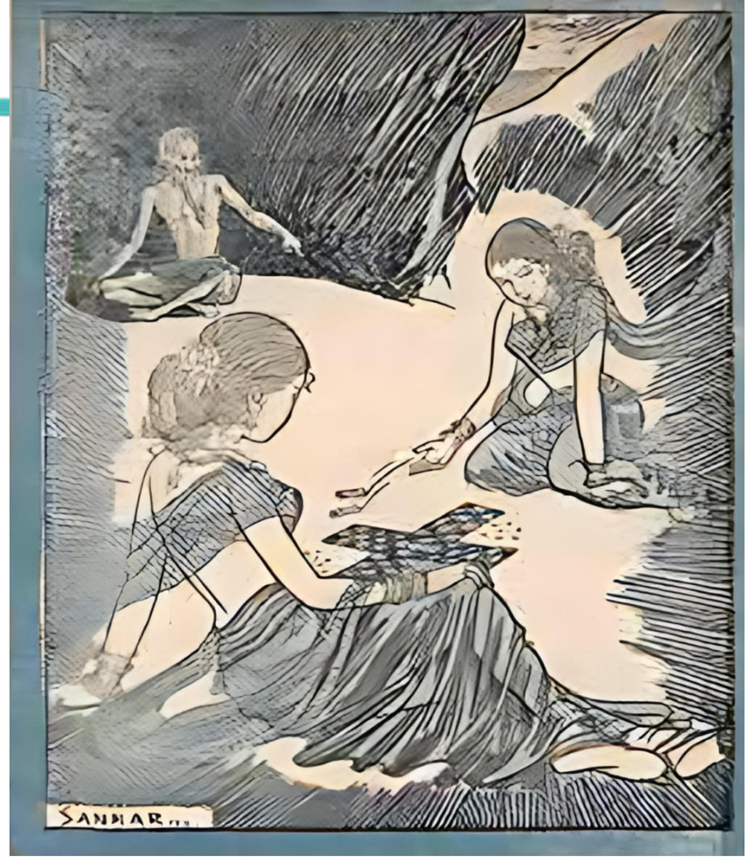
यों एक-दो दिन और बीत गए। बिलटू सारा समय भगवान के भजन में ही काटने लगा। घर में छटाँक भर दाना नहीं रह गया था। बाल बच्चे भूख से छटपटा रहे थे। पति की इस विचित्र प्रवृत्ति को न सह कर पत्नी गाली गलौज पर उतारू हो गई।

यह देख कर बेचारे बिलटू ने सोचा- "भगवान के भजन के लिए भी जब इस घर में गुञ्जाइश नहीं रही, तब यहाँ रहना ही क्यों ?"

बस, विरक्त होकर सीधे सामने के पहाड़ की तरफ चल पड़ा। पास ही 'मन्त्र-पर्वत' नामक एक दुर्गम पहाड़ था। रात की तो बात क्या, दिन में भी कोई उस पहाड़ पर नहीं जाता था। लोगों का कहना था कि उस पर भूत-प्रेत, यक्ष गन्धर्व आदि रहते हैं। भगवान के भजन में भूला हुआ बिलटू सीधे उसी पर्वत पर चला गया और लता-गुल्म से आच्छादित एक सघन-शीतल स्थान में बैठ कर भगवान के भजन में लीन हो गया।

यों कितना समय बीत गया, कहा नहीं जा सकता।

एक दिन जब वह ध्यान में बैठा था कि पास से ही कोई आवाज़ आई। लता-पत्ता और डाली टहनियों का हटा कर उसने इधर-उधर देखा। लक-दफ कपड़ों में चम-चम चमकती दो बालाएँ पास ही पच्चीसी खेल रही थीं। बिलटू चुपचाप देवने लगा था। ये लड़कियाँ कौन हैं, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। वह तो उनके उस खेल को ऐसे गौर से देख रहा था, जैसे वह भी उसमें एक साथी खिलाड़ी हो।




पच्चीसी खूब जम रही थी। बिलटू जमीन पर गिरने वाली हर कौड़ी को बड़े गौर से देखता था। सहसा एक लड़की ने बिसात पर की एक गोटी को ऊपर खिसका दिया।

"बेटी, वह चाल गलत है।" बिलटू सहसा बोल पड़ा।

भयभीत होकर लड़कियों ने बोलने बाले की ओर देखा।

दूसरे ही क्षण वे लड़कियाँ हरिन, वन गईं और चौकड़ी भरती भाग खड़ी हुई। यह दृश्य देख कर बिलटू को सपने से जागने जैसा मालूम हुआ। तुरन्त उसे अपने घरवार, पत्नी तथा बाल-बच्चों की याद आ गई और एक बार सबको देख आने की इच्छा से वह उठ खड़ा हुआ।

थोड़ी ही देर में वह पहाड़ से उतर पड़ा। प्यास मालूम हुई। पास ही तालाब था। वहाँ गया और ज्यों ही झुक कर पानी पीने लगा, कि उसमें उसे एक बूढ़े का रूप दीख पड़ा। बिलटू डर गया। "यहाँ सब कुछ विचित्र है। असल में यह पहाड़ ही मायामय है।" सोचता हुआ वह घर पहुँचा।

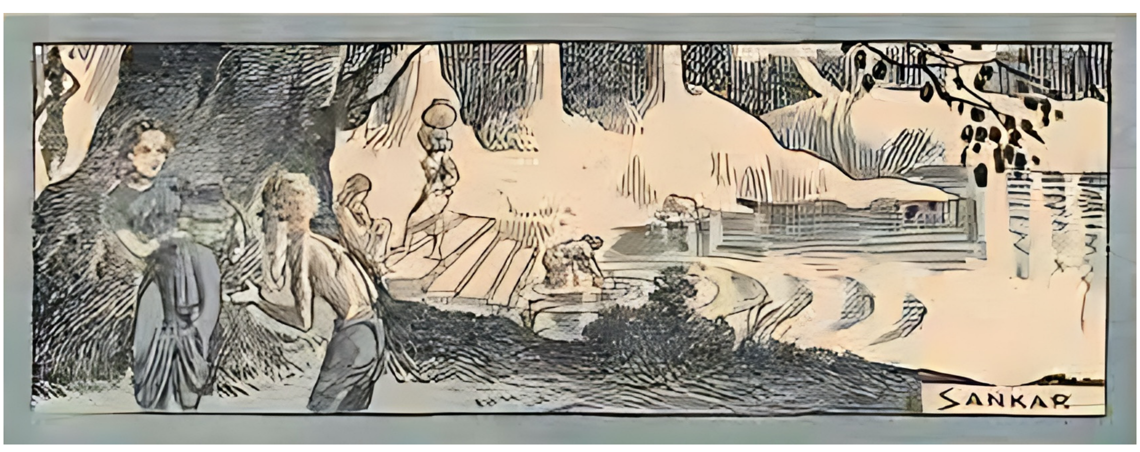
लेकिन घर का वहाँ नामो निशान भी नहीं था। "मेरा घर-बार क्या हो गया?" बिलटू चिन्तित हो उठा।

इतने में पानी का घड़ा उठाए एक औरत आती दीख पड़ी। बिलटू ने उससे पूछा-"अरी मैया, यहाँ बिलटू लकड़हारे का घर-बार था। क्या तुम कुछ जानती हो उसके बारे में ?" अचरज से देखती वह औरत बिल्टू से कहने लगी-"तीन पीढ़ियों के पहले कभी बिलटू नामक कोई लकड़हारा यहाँ सपरिवार रहता था। एक दिन विरक्त होकर वह मन्त्र-पर्वत पर चला गया और फिर नहीं लौटा। यह मेरी दादी कहा करती थी।" यह सुनते ही बिलटू की समझमें सब कुछ आ गया। एक बार अपने शरीर पर उसने नजर फेरी। तमाम झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। दाढ़ी के सफेद बाल घुटनों तक पहुँच रहे थे। आते समय उसे तालाब में जो रूप दीख पड़ा था, उसमें और इसमें कोई फर्क नहीं था। शरीर की शक्ति क्षीण हो गई थी। थक कर वह एक पेड़ के नीचे धम से बैठ गया। उसे देख कर तरस खाती हुई वह औरत जाने लगी कि बिलटू ने उसे रुकने का इशारा किया। वह रुक गई। बिल्टू ने कहा-"मेरी एक बात है। उसे सारे गाँव में ही नहीं, जहाँ कहीं गुञ्जाइश हो, सब जगह फैला देना।"

औरत ने पूछा-"क्या है वह बात ?"

"भगवान के भजन मे डूब अपने घर-बार को ऐसा कोई न भूले। यह महापाप है। करने वाले लोग दूसरे जन्म में कुते-कौए होकर पैदा होंगे।"

यह कह कर उसने उसाँस ली और वहीं पेड़ के नीचे ढेर हो गया। कुछ देर के बाद झुण्ड के झुण्ड गाँव के लोग वहाँ आने और बिलटू की कहानी कहने-सुनने लग गए।






चढ़ती धूप — ढलती छाया